जिस मेँ
१०२ स्वदेशी और विदेशी संतोँ, महात्माओँ
विद्वानों और ग्रंथों के अनुमान ८५०, चुने हुए
वचन १८२ पृष्टोँ मेँ छपे हैँ।

सम्वत १९७६

[तीसरी बार ५०००

पाठकगण

कागज़ का दाम इधर और भी बढ़ जाने और छपाई, सिलाई तथा जिल्द बँधवाई बहुत बढ़ जाने के कारण, बेजिल्द का दाम ||||) और जिल्दार का १|) करना ही पड़ा। तो भी एक खूबसूरत हाफ़टोन चित्र संग्रह-करता का इस पुस्तक में लगा दिया गया है।

भक्त शिरोमणि,

बेलवेडियर हाउस, इलाहाबाद। } मनेजर, लोक परलोक हितकारी चैरीटी फंड,

Printed by
E. Hall, at
the Belvedere Steam Printing Works.
Allahabad.

ऐतिहासिक सूची (अक्षर के क्रम में)

संक्षेप

ज० = जन्म । मृ० = मृत्यु । स० = समय । वि० = विक्रमीय संवत ।
पू० वि० = विक्रमीय संवत के पहले ।

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
अफ़लातून ...	यूनानी फ़िलासोफ़र, अरस्तू का उस्ताद, ३७२-२९० पू० वि०	१४५, २१५, ३९४, ४०८ (पर०) १३८
अबू बकर ...	औवल खलीफ़ा, हज़रत मुहम्मद के ससुर, जो उनके २ बरस पीछे ६९२ वि० में मरे।	(पर०) १५२
अरस्तू ...	यूनानी फ़िलासोफ़र, सिकंदर बादशाह का उस्ताद, ३२७-२६५ पू० वि०	१५, ४६, ९९, १००, ३६७, ३६९
अष्टपाद ...	संस्कृत पुस्तक, प्राचीन ...	१४४, ३६० (पर०) १११
आवरबरी ...	लार्ड, भारी विद्वान और नीतिज्ञ, ज० १८९१ वि०	२६, २०९, २१०, २११, ३९१
आसवल्ड ...	इँगलिस्तान का नीति शास्त्र का पंडित, २०वाँ शतक।	(पर०) २१२
इदरीस ...	पैगम्बर जिन का जीते जी वैकुंठ जाना कहते हैं।	३९२
ईवल थाट्स	अँगरेज़ी पुस्तक	(पर०) ९४

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
ईसा (हज़रत)	पैग़म्बर, ५७ वि० ...	(पा०) ४६, १०७, १२५, १५०, १५८, १७४
उपनिषद् ...	वेद का सार ग्रंथ; इस नाम से दस प्रधान ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।	
कबीर साहिब	संत, काशी, १४५५-१५७५ वि०	३७, ५१, ७४, १३५, १९६, २०७, २३२, २१८, २३६, २४५, २७५, २७७, २८२, ३३३, ३४६, ३५२ (पर०) ६, २२, २३, ३९, ५०, ५४, ५८, ६७, ७६, १०६, ११५, ११६, १४१, १६१, ११६, १७३
कानफ़्यूशियस	चीन का फ़िलासोफ़र, पाँचवाँ शतक पू० वि०	४३०
कानशीचौ ...	चीन का फ़िलासोफ़र	४२६
कामन थाट्स	चेस्टर मकनाटन प्रिंसपिल राजकुमार कालिज काठियावाड़ की रची हुई उपदेश की पुस्तक, १९वाँ शतक।	२५, ५२, १११, १७४
कालिदास ...	जगत विख्यात कवि जो राजा भोज के राज दरबार के रत्न कहे जाते हैं।	१२२, २९५

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
कीटो ...	जापान का फ़िलासोफ़र ...	१०६
कीमियाइ-सआदत	फ़ारसी पुस्तक ...	३८ (पर०) ६४, ६५, ११६, १६३, २२२, २३०
ग़ज़ाली ...	ईरानी कवि, ११वाँ शतक वि०	१०२
गौतम ...	न्याय शास्त्र के आदि प्रवर्तक और धर्म शास्त्र के एक ग्रंथ के कर्त्ता।	५ (पर०) २७
चरनदासजी	साध, ज० १७६० वि०, मेवात राजपूताना।	१६८
छाँटे हुए वचन महात्माओँ के	हिन्दी पुस्तक, २०वाँ शतक वि०	२२१ (पर०) ११, ५६, ११२ १२८, १२६, २२८, २३२
जगजीवन साहिब	संत, बाराबंकी (अवध), १७२७–१८२७ वि०	३१६ (पर०) ८६
जापान की शिक्षा	...	४१, ४५, ५७, २०५, २३३, ४२८
जालीनूस ...	प्रसिद्ध यूनानी फ़िलासोफ़र और हकीम, १८७–२६७ वि०	५३, ६६, ३८१
जैन-सूत्र ...	जैनी पुस्तक, बार्तिक	१०१, ३८२ (पर०) ६३, ६६, २११
टालमड ...	इबरानी लेख कई विद्वानों का, १६३ पू० वि० से २५७ वि० तक	(पर०) ३५

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
डायोजिनीज़	यूनानी तपस्वी, ज० अनुमान ४६८ पू० वि०	२५७
डिमासथिनीज़	प्रसिद्ध यूनानी सुवक्ता, ज० अनुमान ४३८ पू० वि०	१३२,२५३,२५६,२६१
तज़किरतुल-औलिया	फ़ारसी पुस्तक, बार्तिक ...	१३०, १५३,३५७,३६०, (पर०) ४, ७७, १०३-१०५,११६,११७, १२१, १३६, २०६
तुलसीदास (गुसाईं)	हिन्दी रामायन वाले, ज़िला बाँदा, १५८९–१६८० वि०	३१७ (पर०) ६, ७२
दादू दयाल ...	भारी महात्मा, दादू पंथ के चलानेवाले,१६०१–१६६०वि०	२१६ (पर०) १७८
दूलनदासजी	अवध के भारी महात्मा, जन्म १८वाँ शतक वि०	१७६, ३११ (पर०) १६८
धम्मपद ...	बौद्ध पुस्तक, १८९ पू० वि०	२८, ५८, ८४, १५१, १८२, २३१, २३४, २४९, २६५, २६६, २७६, २७९, ३०५, ३०७, ३१९ (पर०) ४९, ५२, ७१, ९८,१४०,१४३,१४४, १४६, १९२

ऐतिहासिक सूची

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
नीति शास्त्र	शुक्र, चाणक्य, तथा कामन्दक के रचे प्राचीन ग्रंथ।	९१, ९४, २०६, ३६३, ३७२, ३९६
पलटू साहिब	ऊँची गति के अवध के संत, ज० १९वाँ शतक।	(पर०) १३२, २१४
पारस-भाग ...	हिन्दी ग्रंथ, वार्तिक ...	११, ९६, ११५, १६४, १८३, २२९, २६७, ३७०, ३७२ (पर०) ४३, ६१, ८५, १३९, १४८, १५७, १७६
फ़िरदौसी ...	कवि, जन्म खुरासान ९७३ वि०	१०
फ़ीसागोरस...	यूनानी फ़िलासोफ़र ... ५२५—४४३ पू० वि०	१२५, १२९, २२६, ३६८
बुज़ुरचिमिहर	ईरानी फ़िलासोफ़र ...	२९, ३९, ८३, २१८, ३९२
बुद्ध महाराज	ज० ५६५ पू० वि० ...	१७३, २४६, ४२७, ४२८
बेकन ...	लार्ड, अपूर्व ग्रंथकार, १६१८—१६८३ वि०	१९, ५४, १७०, १७७, २५८, २६९, ३२९
बेन्ज़मिन फ्रैंकलिन	अमरीका का प्रसिद्ध विद्वान और नीतिज्ञ जिस ने बिजली के विषय में अद्भुत बातें प्रगट कीं, १७६३—१८४७ वि०	४२४

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
भगवत्गीता	श्रीकृष्णचंद्र का अर्जुन के प्रति उपदेश, प्राचीन ग्रंथ।	(पर०) १५, ४४, ९२ ९६, ११२; १६७
भर्तृहरि ...	उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई जो राजपाट छोड़ कर जोगी हो गये।	४२३
भागवत ...	श्रीकृष्णचंद्र के चरित्र का वर्णन—प्राचीन ग्रंथ।	(पर०) १२, १०६
मनु ...	सब से अधिक मान्य और प्राचीन धर्मशास्त्र के ग्रंथ मनुस्मृति के रचने वाले।	२१, २२, ३३, १०७, १५४, २७१, ३५६, ३७१, ४००, ४२६, (पर०) ५१, ६०, १४७, १५५
महा निर्वाण तंत्र	धर्म संबंधी ग्रंथ जिस में मोक्ष पाने के लिये तंत्र शास्त्र की क्रिया विधि दी है।	(पर०) ४०
महाभारत ...	प्राचीन संस्कृत ग्रंथ कौरव पांडव के युद्ध के विषय में, उपदेश से पूर्ण, समय पहला शतक पू० वि०	२०, १४८, १८६, २२३, २३७, २४२, २७८, २८६ (पर०) ६, २८, ८८, १२७, २१०, २२६, २३५
मारकस आरिलियस	फ़िलासोफ़र बादशाह रोम का, विक्रम के समय के लगभग	१२४, २०२, २७०, २८१, २८३—२८५, २९२,

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
		२६६, २६७; ३०६, ३२२ –३२६, ३८५—३८८ (पर०) ५३, १८७
मीरा बाई ...	महाराना उदयपुर के युवराज की स्त्री, ज० १५५५ वि०	(पर०) ५८
मुहम्मद (हज़रत)	मुसलमानों के पैग़म्बर, ६२६—६८६ वि०। ६७६ वि० में मक्का से मदीना गये।	७३, २८० (पर०) ६०
मेनसियस ...	चीन का फ़िलासोफ़र, मृ० २५६ पू० वि०	२, १८७, ३२५
मौलाना रूम	संत	२२५
योग वासिष्ठ	वसिष्ठजी का श्रीरामचंद्र के प्रति ज्ञान वैराग्य मोक्ष का उपदेश।	११७ (पर०) २६, १८२
राधास्वामी मत के उपदेश।	उन्नीसवाँ शतक वि० ...	१८८, २४१, २६२, ३०३ (पर०) ३, ८, १८—२० ३१, ३३, ३४, ३६, ३६, ४७, ४८, ५७, ६२, ६८, ७८, ८६, ६१, ६५—६७, १०७, ११४, १२३, १५४, १६२, १६५, १६६, १७०, १७२, १७५, २३१

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर वचन
रामायण (वाल्मीकि)	संस्कृत पद्य का प्राचीन ग्रंथ	२४४, ३५५
रैदास ...	काशी के प्रसिद्ध महात्मा और भक्त, जाति के चमार, मीराबाई के गुरू।	३१३, ३१४
लाल दयालजी	महात्मा, समय १८ वाँ शतक वि०	देखो प्रश्नोत्तर परिशिष्ट म
लुक़मान ...	अँगरेज़ी में इन का नाम ईसाप लिखा है जिन की अपूर्व शिक्षादायक कहानियोँ की पुस्तक प्रसिद्ध है यह पहले ग़ुलाम थे फिर इन का चमत्कार फैला और एशिया के बादशाह क्रीसस के मंत्री हुए, ५६३—५०३ पू० वि०	४४, ११३, २७२, ३०१, ३०२, ३२८, ३६५, ३६६ (पर०) २२८
व्यास ...	वेद के संग्रह-कर्त्ता और पुरानोँ के रचयिता।	२६०
वल्लभाचार्य	कृष्न उपासक पुष्टि संप्रदाय के प्रथम आचार्य।	१६३
वसिष्ठ संहिता	वसिष्ठ मुनि का लिखा धर्म शास्त्र ग्रंथ।	(पर०) ७०
वान हामर ...	आस्ट्रिया का फ़िलासोफ़र, संस्कृत का विद्वान, मृ० १९१३ वि०	९३, ३००, ३२६

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर बचन
शंकराचार्य	अद्वैत वेदान्त के प्रसिद्ध प्रवर्तक ८४५—८७७ वि०	(पर०) १४, ६६
शिवली ...	सूफ़ी भक्त ईरान के ...	२३० (पर०) २१
सहजो बाई ...	परम भक्त, चरनदासजी की चेली, १८०० वि०	(पर०) ८४, १८६, २०६
सादी (शेख़)	महात्मा और विद्वान, जन्म शीराज़ १२२३ वि०	४, १४, ७५, ८५, १५५, १८५, १८६, २०१, २१४, २४२, २४७, २८७, २६३, ३०६, ३१०, ३३८, ३४६, ३६४, ३७४, ३७५, ३८०, ३६७ (पर०) २६, १८६, १६०, २१७
सांख्य दर्शन	छओं प्रधान दर्शनों में एक दर्शन जो सभों में प्राचीन माना जाता है।	२२२
स्पिरिचुअल कस्वट	अँगरेज़ी पुस्तक, २०वाँ शतक	४६
सिसिरो ...	रोम (इटली) का महान सुवक्ता ज० १६२ पू० वि०	१८०, ३८३
सीमंड ...	ऐसलैंड का पादरी, १२वाँ शतक वि०	३४, ३४०

पूरा नाम	व्याख्या	नंबर बचन
सुकरात ...	यूनान का अनूठा बुद्धिमान, ज० ५२५ पू० वि०, इन्हें ४५५ पू० वि० में नई पूजा चलाने के लिये बध का दंड मिला।	४२, ६०, १३६, १४१
सुन्दरदास ...	जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान कविराज और महात्मा, १६५३—१७४६ वि	४०, २०८, २८०, ३०८, ३८५ (पर०) २०४
सुलैमान ...	यहूदियों का बुद्धिमान राजा, ९३६—८९६ पू० वि०	१३९, १९३
सेनेका ...	रोम (इटली) का नामी फ़िलासोफ़र, ज० ५३ पू० वि०	१५६, ३५४
सोमदेव ...	जैनी महात्मा	११८, १२७
सोलन ...	यूनानी फ़िलासोफ़र, ५८१—५०२ पू० वि०	५६, २६०, ३३०
हसन बसरी	सूफ़ी ...	३३४ । (पर०) १५९
हातिम ताई ...	प्रसिद्ध दाता ...	३३२, ४१६
हितोपदेश ...	सामाजिक तथा नैतिक उपदेश की संस्कृत पुस्तक	३, १६, ६०, १०३, ११९, १२०, १६६, १९१, २२७, २७३, २७४, ३५१, ३६२, ३७९, ४०५, ४१०, ४१७—४१९ (पर०) २४, २५, ७६, ८७, १८३, १९१, २१५
हुरमुज़ ...	ईरान का बादशाह, नौशेरवाँ का बेटा।	३४५

सत्यधाम वासी राय बहादुर बाबू बालेश्वर प्रसाद
(सम्पादक संतबानी पुस्तकमाला व लोक परलोक हितकारी)
इलाहाबाद

लोक परलोक हितकारी

भाग १—लोक

१ विद्या, शिक्षा, आचरन

बालक माँ बाप के हाथ मेँ मालिक की सौँपी हुई अमानत है। बालक का हृदय मोम सा नर्म और कमाई हुई धरती के समान उपजाऊ होता है कि उस मेँ जैसा ठप्पा लगाओ और जैसा बीज बोओ वैसी पौद उगती और आगे चल कर फूलती फलती है यद्यपि पूर्व जन्म का संस्कार बिल्कुल न मिटे। इसलिये लिखाने पढ़ाने के साथ ही जब अवसर मिले माँ बाप को चाहिये कि अच्छोँ और बुरोँ की मिसाल दिखालाकर लड़कोँ के हृदय मेँ सत्य, शील, क्षमा, संतोष, दीनता, भगवत-भक्ति आदि के गुन बसावेँ और झूठ, क्रोध, बैर, बिरोध, लालच अहंकार आदि के अवगुनोँ से अरुचि पैदा करावेँ। जो माता पिता अपने इस धर्म मेँ चूकते हैँ वह भारी जवाबदिही अपने ऊपर लेते हैँ॥

२—हर आदमी की प्रकृति मेँ दया, करुना, लज्जा और कुकर्म से अरुचि के अंकुर धरे हैँ चाहे वह उन्हेँ सीँच कर

बढ़ावे चाहे सुखा दे। यह गुन मनुष्य-प्रकृति के वैसे ही अंग हैं जैसे कि हाथ पाँव ज्ञान-इन्द्रियाँ शरीर के अंग हैं और उसी तरह अभ्यास से पुष्ट हो सकते हैं—मेन०

३—लड़कपन में पढ़ी हुई विद्या कभी नहीं भूलती जैसे मिट्टी के कोरे बरतन में जो सुगंधि भरी जाय उस का असर मिटाये नहीं मिटता। संसार में जो आदमी समझदार हैं वह विद्या सीखने और धन कमाने में ऐसा समझते हैं कि हम सदा बने रहेंगे कभी न मरेंगे और धर्म के करने में यह समझ धारन करते हैं कि हमारी मौत आचुकी, कोई साँस जीवन का बाक़ी नहीं, जो सुकृत करना है अभी कर डालें—हित०

४—एक बुद्धिमान अपने लड़कों को समझाया करते थे कि बेटा विद्या सीखो, संसार के धन धाम पर भरोसा न रक्खो, तुम्हारा अधिकार तुम्हारे देश के बाहर काम नहीं दे सकता, और धन के चले जाने का सदा डर रहता है चाहे उसे एकबारगी चोर ले जाय या धीरे धीरे ख़र्च हो जाय, परन्तु विद्या अटूट सोत धन का है और यदि कोई विद्वान निर्धन हो जाय तौभी दुखी न होगा क्योंकि उस के पास विद्या रूपी द्रव्य मौजूद है। एक समय में दमिश्क़ नगर में ग़दर हुआ और सब लोग भाग गये तब किसानों के बुद्धिमान लड़के बादशाह के मंत्री हुए और पुराने मंत्रियों के मूर्ख लड़के गली गली भीख माँगने लगे। अगर पिता का धन चाहते हो तो पिता के गुन सीखो क्योंकि धन तो चार दिन में चला जा सकता है। किसी ने हज़रत इमाम मुरशिद बिन

ग़ज़ाली से पूछा कि आप में ऐसी भारी योग्यता कहाँ से आई जवाब दिया कि इस तरह कि जो बात मैं नहीं जानता था उसे दूसरों से पूछ कर सीखने में मैं ने लाज न की। यदि रोग से छूटा चाहते हो तो किसी गुनी वैद को नाड़ी दिखाओ। जो बात न जानते हो उस के पूछने में लाज या आलस न करो क्योंकि इस सहज जुगत से योग्यता की सीधी सड़क पर पहुँच जावगे—सादी।

५—लड़कों के चित्त में क्या उत्साह जगाना चाहिये?

(१) जिन्हों ने हमें पाला पोसा उनकी बुढ़ौती में हम सब प्रकार की सेवा करें।

(२) उनके घर गिरस्ती और ब्योपार के भार को आप सम्हाल कर उन्हें निश्चिन्त कर दें।

(३) अपने को उनकी गद्दी पाने के योग्य बनावें।

(४) जब वह न रहें तो उन की याद बनाये रक्खें॥

६—शिक्षा सब अंग में होनी चाहिये अर्थात् देह को काम करने की, सिर (दिमाग़) को सोचने की, और मन को करुना (हमदर्दी) की॥

७—लोगों की ऐसी समझ है कि जब उन्हों ने कालिज़ का सब से बड़ा इम्तिहान दे लिया तो उनकी तालीम पूरी हो गई पर यह बड़ी भूल है। कथा है कि किसी बड़े कालिज का एक विद्यार्थी एम० ए० पास करने के पीछे अपने प्रोफ़ेसर से बोला कि मेरी शिक्षा पूरी हो चुकी इस से विदा होने आया हूँ। प्रोफ़ेसर ने मुसकरा कर जवाब दिया कि "बड़े

हर्ष की बात है, मेरी शिक्षा तो अब प्रारम्भ हो रही है"

८—एक विद्वान् का वचन है कि बिना शिक्षा के आदमी खान से तुरत निकले संग-मरमर के समान है जो टेढ़ा मेढ़ा और मैला रहता है परन्तु जब उसी को छील छाल कर कारीगर साफ़ सुथरा कर देता है तो उसका जौहर निकल आता है और सब धारियाँ और लहरियाँ खिल उठती हैं ऐसा ही शिक्षा का प्रभाव है कि मन के ऊपर से अविद्या की मैल को धोकर उस में अच्छे गुन और सुभाव झलकाती और बसाती तथा बुद्धि और विचार को पुष्ट करती है॥

९—विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति, धनाद्धर्म्म ततः सुखम्॥

[विद्या से विनय आता है, विनय सुपात्र बनाता है, सुपात्रता धन लाती है और धन से यदि वह सुकर्म में लगाया जाय सच्चा सुख उपजता है]

१०—विद्या का सुभाव पानी के समान है-जैसे पानी ऊँचे को नहीं बहता ऐसे ही विद्या मानी की ओर नहीं जाती, दोनों नीचा स्थान खोजते हैं। बुद्धिमान मूर्ख को जानता है क्योंकि आप मूर्ख रह चुका है पर मूर्ख बुद्धिमान को नहीं चीन्हता क्योंकि वह कभी बुद्धिमान नहीं रहा है-फिर०

११—बुरे भले में बिवेक करना यह सच्ची विद्या है, मूर्ख हर नई चीज़ के पीछे दौड़ता है-पा० भा०

१२—अच्छे गुनौं के सीखने में यह समझ धारन करनी चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधार का है न कि लोक बड़ाई मिलने का—चीन

१३—बुद्धिमान के सामने जो बात। खेल में भी कही जायगी वह उस से शिक्षा लेगा परन्तु यदि मूर्ख को ज्ञान के हज़ार ग्रन्थ सुनाए जायँ तो उस को मूर्खता और खेल जान पड़ेंगे ॥

१४—बुद्धिमान की बात को पूरी सावधानता से सुनो चाहे वह आप उस पर न चलता हो। यदि कोई उपकारी उपदेश भीत पर लिखा हो तो क्या वह सीखने योग्य नहीं है—सादी

१५—पढ़ना साधारन जुगत सीखने की है, अधिक लाभ सुनने से होता है और उस से भी अधिक औरौं को पढ़ाने से। जैसा कि धन देने से धन मिलता है, भलाई से भलाई, वैसे ही शिक्षा देने से शिक्षा मिलती है—अरस्तू

१६—अपने बच्चौं को पढ़ाओ तब माँ बाप की क़दर होगी कि तुम्हें कितनी मिहनत और ख़र्च से पढ़ाया—हित

१७—शिक्षा में पढ़ना और गुनना दोनौं शामिल होने चाहियें जैसे क़वाइद सिखाने में किसी को केवल इतना बता देने से कि क़दम इस तरह उठाओ वह जान तो लेगा पर जब तक लगातार उसकी साधना न कराई जायगी उस का सहज अभ्यास न हो जायगा।

१८—पढ़ना विना गुनने के व्यर्थ है। मेरी इच्छा हुई कि मैं सब विद्या समझ सकूं तो कुछ काल में ऐसी कोई विद्या नहीं रही जिसे मैंने न समझ लिया हो। फिर जब मैं ने अपनी समझ की पूरी भाँति जाँच की तो जाना कि मेरी वैस अकारथ गई और मैं कुछ न सीखा—उ० खे०

१९—पढ़ने से आदमी पूरा, बोलने से उद्यत (मुस्तैद), और लिखने से यथार्थिक (ठीक) होता है—बेकन

२—स्त्री और स्त्री-शिक्षा

२०—स्त्री पुरुष की अर्धांगी और सत मित्र है, प्रीतवन्ती स्त्री धर्म सुख और सम्पति का अनन्त स्रोत है, पतिव्रता स्त्री स्वर्ग के द्वार की कुंजी है, मधुरवैनी स्त्री एकान्त स्थान में संगी, उपदेश देने में पिता तुल्य, विपत काल में माता समान और जीवन का महावन पार करने में विश्राम का स्थान है—म० भा०

२१—जहाँ स्त्री का आदर होता है वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं और जहाँ उन का निरादर होता है वहाँ सब होम यज्ञ आदि कर्म निष्फल होते हैं। जिस घर में स्त्रियों का अपमान होने से वह सराप देती हैं उस घर की विभव का जड़ मूल से नाश होता है। जिस घर में स्त्री पति से और पति स्त्री से संतुष्ट है उस घर में सम्पति सदा बनी रहती है—मनु

२२—इन प्रमानिक वचनों के विरुद्ध पुरुष के लिये स्त्री को हेठी समझना महा अनर्थ है। सच पूछो तो मर्द और

औरत तम्बूरे के दो तार हैं जिन दोनों के मिले विना मधुर सुर नहीं निकल सकता, वरन स्त्री के जोग से पुरुष जुग बँधी गोंट के समान बेखटके चलता है ॥

२३—ऊपर लिखी हुई दशा मैं स्त्रियों को पढ़ाने लिखाने और अच्छे गुन और धर्म सिखाने की भारी आवश्यकता है जिससे उनकी सहज योग्यता गाढ़ मैं अच्छी सलाह और घबराहट और विपत मैं धीरज देने की बहुत बढ़ जायगी; और बच्चों के कोमल हृदय मैं सतोगुनी अंग बसाना, सच से रुचि और झूठ से अरुचि पैदा कराना और पढ़ने लिखने का उत्साह जगाना यह सब परम उपयोगी काम तो जैसे सहज बलिक खेल मैं माता कर सकती है वह बच्चे के बड़े होने पर चतुर और गुनी शिक्षक नहीं कर सकते।

लड़के की चंचल चितवन को रोकना, झटपट किसी बात का नतीजा निकाल लेने के सुभाव को मिटाना, सोचने की आदत डालनी, साधारन बात चीत मैं कारन और कारज का संबंध दिखाना, प्रकृति पर विचार करने के लिये उसकी दृष्टि अंतर को मोड़ना इत्यादि, इन सब बातों को भी माँ के बराबर दूसरा नहीं सिखा सकता ॥

२४—किसी ने एक विद्वान् से पूछा कि बच्चे की शिक्षा किस अवस्था मैं आरम्भ करनी चाहिये; उत्तर दिया "उसके पैदा होने से बीस बरस पहले" ॥

[मतलब यह कि बच्चे के सिखाने के लिये उसकी माता को बचा जनमने के पहले शिक्षा देनी आवश्यक है]

३—कसरत, तन्दुरुस्ती

२५—विद्या के सीखने के लिये मन और बुद्धि (दिल और दिमाग़) के पुष्ट और स्थिर करने की ज़रूरत है और इनकी पुष्टी शरीर की आरोग्यता के आधीन है और शरीर की आरोग्यता बिना कसरत के नहीं बनी रह सकती। शरीर के एक एक अंग और एक एक नस को दिमाग़ से वैसाही संबंध है जैसा घड़ी के एक एक पुरज़े को कमानी के साथ कि एक पुरज़े के बिगड़ने से कमानी काम नहीं देती, इस लिये दिमाग़ के ठीक काम करने के लिये और अंगों को कसरत से दुरुस्त रखने की ज़रूरत है। यह कसरत घर के भीतर और अकेले (जैसे डँड़ मुगदर की कसरत) वैसी अच्छी और दिल्लगी के साथ नहीं बन सकती जैसा कि मैदान की कसरतें जो हमजोलियों के साथ खेल कूद में होती हैं और उनमें बाहर की साफ़ हवा का भी फ़ाइदा मिलता है जैसे क्रिकेट फ़ुटबाल वग़ैरह। उनका असर आदमी के चाल-व्योहार पर भी पड़ता है क्योंकि उनसे एका, सहन, धीरज, दृढ़ता बढ़ती है, और स्वार्थ, परतंत्रता और आलस के अंग घटते हैं—का० था०

२६—कड़ी मिहनत से तन्दुरुस्ती नहीं बिगड़ती पर घबराहट, झंझट, चिंता, असंतोष से उसकी बहुत हानि होती है, और निरासता तो आदमी को तोड़ ही डालती है—आबरबरी

४—सोना

२७—सोना जितना तन्दुरुस्ती के लिये चाहिये ठीक है परंतु अधिक सोना अच्छा नहीँ ; और आधी रात के पहले एक घंटे की नींद उसके पीछे के दो घंटे से बढ़ कर उपकारक है। याद रक्खो कि सोने के समय किसी बात का चितवन बुरा है क्योंकि सोने का अभिप्राय बुद्धि (दिमाग़) को विश्राम देने का है और सोचने मेँ उसका काम जारी रहता है, परंतु भगवत-ध्यान और ही बात है। एक महात्मा ने कहा है कि नींद मौत की छोटी बहिन है और उससे ऐसी तद-रूप कि बिना मालिक के सुमिरन ध्यान के मैं उसको धंसने नहीँ देता ॥

५—कम खाना

२८—भूख से कुछ कम खाने से शरीर मेँ फ़ुरती बनी रहती है काम करने का जी चाहता है और आदमी निरोग रहता है; अघा कर खाने से आलस और भारीपन पैदा होता है जिस से पड़ रहने की इच्छा होती है और दया-शीलता मेँ कमी ; और भूख से अधिक खाने की आदत से आदमी बिल्कुल निकम्मा हो जाता है रोग पैदा होते हैँ उमर घटती है और परमार्थ मटियामेल हो जाता है—ध० प०

२९—निकम्मा कौन है ? पेटासू। सज्जन की क्या पहचान है ? जो अपने को सब से छोटा समझता हो। सज्जनता कैसे आवे ? मन को बस मेँ रखने से। मन बस मेँ कैसे

आवे ? कम खाने से। कम खाना कैसे सीखे ? थोड़ा थोड़ा करके आहार घटाने से—बुजुर्ग०

३०—कथा है कि ईरान के बुद्धिमान बादशाह अर्दशीर बाबकान ने अपने हकीम से पूछा कि हम को दिन रात में कितना खाना उचित है। जवाब दिया कि १०० दिरम (=३६ तोला) काफ़ी है। बादशाह बोला कि इतने कम खाने में शरीर कैसे चलेगा। उत्तर दिया कि शरीर के पोषन के लिये इससे अधिक नहीं चाहिये, बोझ ढोने के लिये जितना चाहे पेट में भर ले॥

३१—एक बड़े डाक्टर ने कहा है कि आदमी जितना खाता है उसका आधा भी नहीं पचा सकता बाकी पेट में रह कर विकार पैदा करता है। इस पर आस्ट्रेलिया के नामी डाक्टर हर्न ने तर्क किया है कि पचने से क्या होता है, कितने हृष्ट पुष्ट आदमी बहुत सा खाना पचा लेते हैं लेकिन सब पचा हुआ आहार शरीर के पोषन के काम में नहीं आता बाक़ी जो बच रहता है उससे प्रान की रक्षा करने वाली शक्ति की दो प्रकार से हानि होती है—पहले तो उसके पचाने में और फिर उसके बाहर निकालने में॥

३२—किसी ने एक वैद्य से पूछा कि खाना किस वक्त खाना चाहिये, जवाब दिया कि ग़रीब को जब मिले और अमीर को जब भूख लगे॥

३३—विद्यार्थी को चाहिये कि जैसा तैसा भोजन मिले

उस का आदर करे। जो भोजन सदा रुचि से खाया जाय तो उससे शरीर में पुष्टता आती है और आदमी जवान बना रहता है, परंतु अरुचि से खाने में दोनों का नाश होता है। बहुत खाने से आरोग्यता और धर्म दोनों बिगड़ते हैं—मनु

३४—पशु चराई से लौटने का समय जानता है पर मूर्ख अपने पेट का परिमान नहीं जानता—सीमंड

६—मांस-आहार

३५—मांस-आहार का निषेध जीव हिंसा के कारन तो सबको अपने चित्त की कोमलता और सुभाव के अनुसार थोड़ा या बहुत खटकता है पर उसको आरोग्यता और पुष्टता लानेवाला समझ कर लोग और ख़याल को दबा देते हैं लेकिन अब यूरप और अमरीका आदि बड़े बड़े मांस-आहारी देशों के नामी डाक्टरों ने मांस की मात्राओं को अलग करके और विद्या के दूसरे प्रकार की परीक्षाओं से सिद्ध कर दिया है कि मांस के आहार में बहुत से अवगुन हैं और क्या आरोग्यता और क्या पुष्टता के विचार से कितने ही फल मेवे और अन्न उससे बढ़ कर उपयोगी हैं। प्रसिद्ध डाक्टर केरिंगटन (Carrington) जिन्हों ने एक जुग इस परीक्षा और खोज में खर्च किया लिखते हैं कि पहले तो हर एक पशु पंछी के मांस में जीवन के क्रम ही से विष आजाता है जिसके खाने से रोग उत्पन्न होते हैं, दूसरे जिस पशु का मांस खाया जावे उसके सुभाव खाने वाले में आते हैं, तीसरे आहार के लिये वह पदार्थ विशेष उपयोगी हैं जिन को असली हालत में

विना आँच से पकाये खा लेने की इच्छा उपजे जैसा कि कितने ही फल मेवे और अन्न, परन्तु पशु पंछी मेँ एक भी ऐसा नहीँ है जिस को देख कर उसका मांस कच्चा खाजाने को जीभ से पानी टपके, चौथे मनुष्य के दाँत और दूसरे अंगोँ और मेदा (झोझ) और कलेजा इत्यादि को देखने से सिद्ध होता है कि प्रकृति ने उसे मांस-आहारी नहीँ रचा है, पाँचवेँ यह एक अशुद्ध वस्तु है, छठे पाचन मेँ भी गिरिष्ठ है। ऐसा ही सिद्धान्त अनेक डाक्टरोँ का है जिन्होँ ने इस विषय का पूरा विचार और परीक्षा की है और सब का सम्मति है कि आहार के लिये सब से उत्तम पदार्थ साधारन और कड़े छिलके के फल और मेवे हैँ जो सदा से ऋषि मुनि और अभ्यासियोँ का आहार रहा है और उस से उतर कर अन्न: और इनके ग्रहन करने वाले मांस-आहारियोँ से अधिक दीर्घ-आयु और आरोग्य और निरआलस होते हैँ॥

३६—इस विषय पर अकबर बादशाह का वचन अति मनोहर और भारी असर पैदा करने वाला है—

شکار کار بیکاراں ست برای اندک لذتے کہ زیادہ از آنے
بہ زبانے نمی ماند قصد جانداراں نمودن عین سنگدلی ست
و صدور خود را کہ مخزن اسرار ایزدی ست قبور حیوانات
گردانیدن عین گستاخی کہ گفتہ اند -

میازار مورے کہ دانہ کش ست
کہ جاں دارد و جان شیریں خوش ست

[अर्थ—शिकार निठल्लोँ का काम है। थोड़े से स्वाद के लिये जो छिन मात्र जीभ को मिलता है जीव जन्तु की

हिंसा करना बड़ी कठोरता की बात है और अपने पेट को जो कर्त्ता के भेदों का भंडार है पशुओं की क़बर बनाना उस के भारी निरादर का कर्म है जैसा कि कहा है—एक चींटी को भी न सताओ जो चारा खाती है क्योंकि वह भी जीवधारी है और अपना जीव हर एक को प्यारा है]

७--नशा

३७—नशा सब बुरा है चाहे वह मदिरा का हो चाहे और कोई। वह आप से आप बढ़ता जाता है और आदमी को दीन दुनिया के काम का नहीं रखता और सब की आँखों से गिरा देता है। सिवाय इसके हर नशे में ज़हर होता है जो दिमाग़ के उन हिस्सों को जिनका सारी देह पर असर पड़ता है बिगाड़ देता है और कुछ काल में भारी रोग लक़वा पागलपन आदि के पैदा करके छोटी ही अवस्था में प्रान लेता है। कबीर साहिब ने कहा है—

अवगुन कहों सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पशुआ करै, द्रव्य गाँठि का देय॥
अमल अहारी आतमा, कबहुँ न पावै पारि॥
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागौ ताहि बिचारि॥

८—कम बोलना

३८—जैसा कि यह उचित है कि उतना ही खावें और उतना ही सोवें जितना तन्दुरुस्ती के लिये दरकार है उससे अधिक यह बात है कि ज़रूरत से ज़ियादा न बोला जाय

क्योँकि जो आफ़तेँ ज़बान द्वानी है वह इतनी हैँ कि कम बोलने ही मेँ कुशल है-की० स०

३९—मूर्ख कौन है ? बकवादी । मूर्ख को चाहिये कि सभा मेँ मुँह न खोले और बुद्धिमान केवल प्रश्न का उत्तर देने के हेतु । बहुत सुनना और थोड़ा बोलना यही बुद्धिमान का लच्छन है-बुज़र०

४०—कर्त्ता ने आदमी को आँख और कान तो दो दो दिये हैँ पर जीभ एक ही, इस लिये चाहिये कि चार बातेँ देख और सुन कर एक बात बोलो । कबीर साहिब का वचन है—

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल ।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल ॥

—सुन्दर

४१—जहाँ कोई बात मुँह से निकली चार घोड़े की गाड़ी से नहीं पकड़ी जा सकती इस लिये जीभ की सँभाल रक्खो—जापान

४२—जब तक बात तुम्हारे मुँह से नहीं निकली है वह तुम्हारे बस मेँ है पर ज्योँही मुँह से निकली तुम उसके बस मेँ हो गये—सुक़रात

४३—जो अपनी जीभ को बस मेँ रख सके तो वह लाखोँ आदमियोँ को अपने बस मेँ कर सकती है ॥

४४—पशु न बोलने से कष्ट उठाता है और मनुष्य बोलने से—लुक़०

४५—बात दिल की कुंजी है जिस से मन का हाल खुलता है। हँसी उड़ाना झुलस देनेवाली बिजली है-जापान

४६—हर आदमी समझता है कि वह दूसरों से अधिक जानकार है और बात करने में अक्सर ज़रूरत से ज़ियादा बोल जाता है, इसलिये अगर बोलने में इन पाँच बातों का बिचार रक्खो तो बहुत आफ़तों से बचे रहो-(१) जहाँ तक हो सके चुप रहो और काम पड़ने पर कार्य-मात्र बोलो, (२) चिल्ला कर या हुकूमत की आवाज़ से बात न करो, (३) अपना या अपने पुरखों की बड़ाई या करतूत कभी न बखानो लेकिन अगर कोई दूसरा अपनी बाबत ऐसी डींग मारे तो उसको बुरा न कहो, (४) अपने परोसी का सिवाय इस के कि जब उस की प्रशंसा करने का अवसर हो ज़िकर न करो, (५) मालिक और उस की अपार दया की सदा चरचा करते रहो और जो अवसर मिले तो उसका सुनना विशेष उपकारी समझो—स्पि० क०

४७—बुद्धिमान तो संदेह में रहता है कि कहाँ बोलना शुरू करे पर मूर्ख कभी नहीं जानता कि कहाँ ख़तम करे, उसकी जीभ जंगली जानवर की तरह है कि जहाँ पगहा तुड़ाया फिर रुकना नहीं जानता॥

४८—जिस तरह पेड़ मेँ पत्ती घनी हो जाने से फल कम लगते हैँ ऐसे ही जो बहुत बोलता है उसमेँ बुद्धि कम पाई जाती है ॥

४९—बहुत प्रश्न करना मूर्खता का लच्छन है, कहा है कि मूर्ख घंटे भर मेँ इतने प्रश्न करता है जिन के उत्तर कोई बुद्धिमान सात बरस मेँ नहीँ दे सकता—अरस्तू

९—मौन

५०—एक बार का ज़िकर है कि प्रसिद्ध बुद्धिमान सोलन मित्र समाज मेँ अपने सुभाव के अनुसार चुप बैठे थे। एक अल्हड़ जवान बोला कि आप नादान हैँ इसी से चुप हैँ। सोलन ने सरल रीत से जवाब दिया कि "नादान तो बिना बोले रही नहीँ सकता" ॥

५१—साकट को मुख बिम्ब है, निकसत बचन भुवंग।
ताकी औषधि मौन है, विष नहिँ व्यापै अंग ॥
कबीर

१०—समय

५२—समय के बराबर क्या लोक क्या परलोक के सम्बन्ध मेँ दूसरी अनमोल वस्तु नहीँ है। जिसने इस को जतन से खर्च न किया वह दीन और दुनियाँ दोनोँ मेँ कंगाल हो जायगा। विचारवान मनुष्य को चाहिये कि उस के एक एक छिन का वैसा ही हिसाब रक्खे जैसे सूम अपनी कौड़ी

कौड़ी का रखता है और रात को सोने के पहले जाँच करले कि कोई घड़ी व्यर्थ तो नहीं खोई, अगर ऐसा किया तो उस के लिये झुरे और पछताय और आगे को चौकस हो जाय। इस मतलव से अपने कामों की प्रातःकाल एक सूची बना लेना बहुत उपयोगी है अर्थात् किस समय से किस समय तक कौन कौन काम संसारी और परमार्थी करने हैं—का० था०

५३—एक बड़े विद्वान का बचन है कि मुझ को कोई बात ऐसी नहीं खटकती जैसा कितनों का यह कथन कि उनका समय नहीं बीतता—जालीनूस

११—अवसर

५४—"अवसर" की उपमा एक यूनानी विद्वान ने गंजे चिकने सिर वाली देवी की दी है जिसके ललाट पर वाल की लट है। वह एक बार लट आगे किये सामने आती है, यदि उस लट को पकड़ लो तो वह सदा को तुम्हारे वस में हो जायगी नहीं तो तुरत पलट कर चिकना हिस्सा सिर का तुम्हारी ओर कर देगी जिसे कितना ही पकड़ना चाहो नहीं पकड़ सकते—बेकन

५५—इसी प्रकरन में लिखा है कि एक आगम-ज्ञानी स्त्री रोम के बादशाह टारक्विन के पास नौ पुस्तकें आगम बताने वाली लेकर गई और उनका भारी दाम माँगा जिस के देने से बादशाह ने इनकार किया। इस पर उसने तीन पुस्तकें जलादीं और शेष छः का उतना ही दाम कहा। बादशाह ने

फिर इनकार किया जिस पर उसने तीन पुस्तकें और जला दीं और बाकी तीन का वही मोल चाहा। आखिर को बादशाह ने पछता कर उन तीन बची हुई पुस्तकों को पूरा दाम देकर मोल ले लिया॥

५६—बुद्धिमान अपने लिये अवसर आप पैदा कर सकता है बहुत ठहरना नहीं पड़ता, पर उसके काम में लाने के लिये चतुरता की ज़रूरत है—सोलन

१२—आलस

५७—आलस अवगुनों का बाप, दरिद्रता की माँ, मानसिक और शारीरिक रोगों की धाय, और जीते जागते आदमी की समाध है—जापान

५८—जो उठने के समय सोता रहता है, जो जवानी और पौरुष होते आलसी है, जिस के मनोर्थ और धारना निर्बल हैं, वह सदा मूर्ख बना रहेगा। यदि कुछ करना है तो लग कर तुरत कर डालो ढीला पड़ने और बेपरवाही से सब काम बिगड़ते हैं। अचेत पथिक केवल धूल उड़ाता है ठिकाने पर नहीं पहुँचता—ध० प०

५९—किसी ने एक अल्हड़ से पूछा कि इतने दिन चढ़े तक पलँग पर क्यों पड़े रहते हो हँसकर जवाब दिया कि मुक़द्दमा फ़ैसल करता रहता हूँ। मेरे यहाँ दो सुन्दर बालक हैं एक का नाम परिश्रम दूसरे का आलस। दोनों में झगड़ा

है सो मेरी नींद खुली नहीं कि यह दोनों पलंग के पास आ डटते हैं और अपने अपने दावे पर ज़ोर देते हैं—एक कहता है कि उठ खड़े हो दूसरा कहता है कि पड़े रहो और दोनों अपनी अपनी दरख़ास्त की ताईद में दलीलें पेश करते हैं जिन पर मैं पड़ा पड़ा विचार करता रहता हूं जैसा कि न्याय-कर्ता का धर्म है। इन बहसों के सुनने में इतनी देर लग जाती है कि रसोई का समय आ जाता है॥

१३—टाल मटोल, ढील

६०—टाल मटोल का सुभाव समय का चोर है। अगर आदमी आज का काज कल्ह पर न टाले तो बहुत सी ख़राबियों से बच रहे-सुक़रात

१४—रहनी

६१—याद है कुछ कि वक्ति पैदाइश।
सब हँसते थे और तू रोता॥
ऐसी रहनी रहो कि मरते वक्त।
सब रोते रहें व तू हँसता॥

१५—सत्य

६२—सत्य से बढ़ कर कोई वस्तु लोक और परलोक में नहीं है-"न सत्यात् विद्यते परम्"॥

६३—मालिक आप सत्य सरूप है इस लिये जो जितना

सत्य का अभ्यास रखता है उतना ही वह मालिक का प्यारा और उस से तद्रूप होता जाता है ॥

—

६४—याद रखना चाहिये कि सत्य उसका नाम नहीं है जिस सत्य के कहने से भगवत् सेवा में विघ्न पड़े या कलह क्लेश पैदा हो या किसी को दुख पहुँचे, इस से तो ऐसा झूठ जो इन सब बुराइयों को रोके हज़ार दरजे बढ़कर है ; मनु ने कहा है–"सत्यं ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियं" अर्थात् सच बोलो पर सुहाता बोलो ऐसा सच न बोलो जो कड़वा लगे। शेख़ सादी ने कहा है "दरोग़ि मस्लहत आमेज़ बिह अज़ रास्तिये फ़ितना अंगेज़" अर्थात् ऐसा सच जिससे झगड़ा पैदा हो उससे परोपकारक झूठ अच्छा है। पंचतंत्र में एक कथा है कि कोई अहेरी एक मृग के पीछे घोड़ा डाले जाता था, मृग आँख से ओझल हो गया। रास्ते में एक साधू को बैठा देख कर अहेरी ने पूछा कि मृग किधर को गया है साधू ने यद्यपि मृग को देखा था पर उस के जीव की रक्षा के लिये कह दिया कि मैं तो अपने भजन ध्यान में लगा हूँ मुझे क्या ख़बर। आगे चल कर दूसरा साधू मिला उस से जब शिकारी ने पूछा तो उसने सत्य धर्म पालन करने की टेक में बतला दिया कि फ़लाने रास्ते से मृग गया है जिस से अहेरी ने उसी ओर घोड़े को दौड़ा कर मृग को मार लिया। मरने पर झूठ बोलने वाले साधू को बैकुंठ में बासा मिला और सच बोलने वाले को नर्क में।

किसी ने एक महात्मा से तर्क किया कि झूठ चाहे वह उपकारक भी हो सच की बराबरी कैसे कर सकता है ! जवाब दिया कि "सच्चे का झूठ भी पेम सच है और झूठे का सच भी झूठ" ॥

१६—न्याव

६५—विचार से बढ़ कर कोई राजा नहीं, न्याव से बढ़कर कोई रक्षक नहीं, यथार्थ से बढ़ कर कोई खड्ग नहीं, सत्य से बढ़ कर कोई संधि नहीं। न्याव पहाड़ पर बने हुए कोट के समान है जिसे न कोई शत्रु-सेना तोड़ सकती और न समुद्र वहा ले जा सकता। यदि तुम संसार की प्रशंसा चाहते हो तो कोई अन्याय का काम न करो और दूसरे की कोई वस्तु न छीनो चाहे ऐसा करना न्याव के विरुद्ध न भी हो। तैमूर-लंग का कथन है कि यदि तुम प्रजा को आराम देना चाहते हो तो न्याव के खड़ग को आराम न लेने दो—अरवी

६६—न्याव में कोमलता मिली रहने से वह सोना और सुगंध हो जाता है॥

६७—हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया है कि एक पल का न्याव हज़ार वरस के भजन वंदगी से बढ़ कर है। कथा है कि सुल्तान मलिकशाह एक दिन नदी के किनारे सैर को उतरे थे उनका एक मुँह-लगा ग़ुलाम था जिस ने एक सुंदर गाय को वहाँ चरते देख कर ज़वह करा डाला और लशकर वालों के साथ वाँट खाया। जिस बुढ़िया की वह गाय थी उस के चार वच्चे उसी के दूध से पलते थे वह इस समाचार को सुन कर दुख के मारे पागल सी हो गई और थोड़ी देर पीछे जब वादशाह घोड़े पर सवार हो कर चले तो लपक कर वाग पकड़ ली और विलाप के साथ अपनी विपत का हाल कह सुनाया। वादशाह को सुन कर दया आई, उस ग़ुलाम को

दंड दिया और बुढ़िया को एक गाय के बदले कई उससे अच्छी गाय और धन दिया। बुढ़िया ने आसीस दी कि जैसा तू ने मुझे इस लोक में न्याव से संतुष्ट किया मालिक तुझे परलोक में दया से मालामाल करे। जब बादशाह मरा तो एक बुज़ुर्ग ने उसे सपने में देखा और पूछा कि अल्लाह से कैसी निबटी जवाब दिया कि अगर उस राँड बुढ़िया की आसीस मेरी सहायक न होती तो नर्क की आग से बचने की कुछ आस न थी—अ० मु०

६८—एक राजा के राज में एक ग़रीब बुढ़िया रहती थी। उस के झोपड़े के पास राजा ने अपना नया महल बनवाया। बुढ़िया के झोपड़े का धुआँ महल में जाता था इस लिये राजा का हुकम हुआ कि बुढ़िया अपना झोपडा वहाँ से हटा ले। सिपाहियों ने बहुत कुछ डाँटा पर बुढ़िया वहीं पड़ी रही अंत में राजा के सामने लाई गई। राजा ने पूछा तू झोपड़ा क्यों नहीं हटाती बुढ़िया बोली महाराज मैं तो आप का इतना बड़ा महल और बाग़ देख सकती हूँ और आप की आँख में मेरी एक टूटी फूटी झोपड़ी खटकती है मुझ निरपराधिन की झोपड़ी यदि आप उजाड़ देंगे तो आप के न्याव पर कलंक लगेगा। राजा लज्जित हुआ और धन से सत्कार करके उस को विदा किया॥

६९—अगर कोई मुझ से कहे कि उस ने किसी न्याय-शील को रोटी का मुहताज देखा तो मैं जवाब दूँगा कि वह ऐसे नगर में बसा होगा जहाँ किसी न्याय-शील का बासा नहीं है—जाली०

१७—सचाई, ईमानदारी

७०—कहा है कि सचाई और ईमानदारी के बराबर कोई मतलब की बात नहीं है, पर याद रक्खो कि जो आदमी मतलब अड़ने ही पर ईमानदारी का बरताव करता है वह पक्का ईमानदार नहीं कहा जा सकता। ईमानदारी और सचाई उसका नाम है जो सदा अडिग्ग रहे न कि केवल मतलब के अड़ने पर बरती जाय। ईमानदारी आत्मा की प्रकृति है और पक्का ईमानदार कभी उसके बरताव में न चूकेगा चाहे उस का सरबस नाश हो जाय या किसी छोटी बात में थोड़ी सी ईमानदारी छोड़ने से भारी संसारी लाभ प्राप्त होता हो॥

७१—"उमर" भक्त ने किसी ग़ुलाम से जो बकरी चराता था पूछा कि तू एक बकरी मेरे हाथ बेचेगा उसने जवाब दिया कि बकरियों का मालिक दूसरा है मुझे तो इनके चराने का काम सपुर्द है। इस पर "उमर" बोले कि इनका मालिक यहाँ तो नहीं देखता है उससे कह देना कि एक बकरी को भेड़िया उठा ले गया। तब चरवाहे ने उत्तर दिया कि जो बकरियों का मालिक नहीं देखता तो घट घट ब्यापी मालिक तो देखता है। यह बचन सुन कर उमर रोने लगे और उस के मालिक को बुलवा कर मुँहमाँगा मोल दे उस ग़ुलाम को छुड़ा लिया और यह कह कर बिदा किया कि जैसे तेरी सचाई ने तुझको ग़ुलामी से छुड़ाया है ऐसे ही परलोक में भी तुझको नर्क के त्रास से बचा कर सुख स्थान में अचल बासा देगी॥

१८—कान्शन्स, ईमान

७२—कान्शन्स उस अन्तरी वैठैया का नाम है जो भले बुरे को जताता है। वह आत्मा की शक्ति है जो हर एक के अंतर में बैठी हुई बोलती है कि फ़लाना काम जो तू कर रहा है भला है या बुरा—अगर उसे भगवत-बानी कहें ठीक है। जो उसकी कहन को मानते हैं वह बड़भागी और जो नहीं मानते वह अभागी हैं॥

१९—शील, कोमल सुभाव

७३—कोमल सुभाव आदमी के लिये भारी पूँजी है-मुह०

७४—सीलवंत सब ते बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की सम्पदा, रही सील में आनि॥

—कबीर

७५—हठ का सामना हित से करो तो काम बने। तलवार की चोखी धार मुलायम रेशम को नहीं काट सकती—सादी

७६—जिसको अपने मिज़ाज के मुवाफ़िक़ हालत और सामान मौजूद हों वह बड़भागी है, पर जो जैसी तैसी हालत और सामान के मुताबिक़ अपना मिज़ाज कर सके वह विशेष बड़भागी है॥

७७—आदमी अपने मिज़ाज पर क़ाबू रखने और कोमल सुभाव से हर एक को बस में कर सकता है। कथा है कि

एक सज्जन को घर के किसी प्रानी ने भी कभी क्रोध में नहीं देखा, एक बार परीक्षा के लिये कुछ लोगों ने उनके पुराने नौकर से कहा कि जो तुक उन्हें एक छिन के लिये भी भड़का दो तो हम तुम्हें बहुत इनाम देंगे। नौकर जानता था कि उसके मालिक को अगर पलँग का बिछौना सिकुड़ा सिकुड़ाया टेढ़ा बेड़ा बिछा रहे तो नापसंद होता है इसलिये उसने क्रोध दिलाने को रात को बिछौना ठीक न किया। सवेरे उठकर उन्होंने नौकर से कहा कि बिछौना ख़राब बिछा था तो उसने जवाब दिया कि हम भूल गये। दूसरे दिन और बुरी तरह बिछौना लगाया और जब मालिक ने अपने ठंढे सुभाव से फिर कहा तो बोला कि छुट्टी नहीं मिली। तीसरी रात को नौकर ने फिर ऐसा ही किया और जब डरता हुआ सवेरे मालिक के सामने आया तो वह मुसकरा कर बोले कि मालूम होता है कि तू मेरी इस आदत को नापसंद करता है और इस काम से उकता गया है सो डर मत मेरी आदत भी यौं ही सो रहने की पड़ती जाती है। यह सुनकर नौकर बहुत लज्जित हुआ और उनके चरनों पर गिर कर सब हाल कह सुनाया।

७८—शाह चाँग जो चीन के शहंशाह का वज़ीर था रात को एक ज़रूरी रिपोर्ट जिसे सवेरे ही शहंशाह के सामने पेश करना था बोल कर अपने सिकत्तर से लिखवा रहा था जो आधी रात को निबटी। शाह चाँग हारा थका सोने के कमरे में जाही रहा था कि संजोग से सिकत्तर के धक्के से लम्प गिर गया और सब काग़ज़ में आग लग गई। सिकत्तर डर के मारे काँपने लगा और शाह चाँग के पाँव पर गिर पड़ा

जिसने दिलासे से जवाब दिया कि तुम्हारा अपराध नहीं संजोग की बात है, बैठ जाव फिर से उस काम को कर डालेँगे ॥

२०—सुभाव, आदत

७६—आदमी सुभाव या आदत का बँधुवा है, जो बात कि पहले ग़ैरज़रूरी थी वह सुभाव पड़ जाने से ऐसी ज़रूरी हो जाती है कि बिना उस के चैन नहीँ आता, इसलिये ऐसी आदतोँ को कभी न पड़ने दो जिन से कुछ भी बुराई पैदा हो सकती है या जिन से दूसरे को कष्ट हो, क्योँकि जो सुभाव पड़ जाता है उस के छोड़ने मेँ जान सी निकलती है, बिरला दृढ़ संकल्प का आदमी उसे दूर कर सकता है ॥

२१—सभ्यता और नम्रता

८०—सभ्यता अर्थात् सुथरा चाल-ब्योहार या रुचिर बरताव और ढंग वशीकरन मंत्र का प्रभाव रखती है और बिना दाम सब को चाकर बना लेती है। कोमल बानी, नम्र बोली, हँसता मुँह, बिना बनावट या अकड़ और डीँग के छोटोँ और बराबर वालोँ के साथ मित्र भाव से और बड़ोँ के साथ प्रतिष्ठा से बोलना और बरतना हर एक के हृदय को पिघला देता है। इस बात को भी याद रक्खो कि बात अवसर से बोली जाय जो सब को सुहाय पर निपट खुशामद की न हो ॥

८१—आदमी की सभ्यता और चाल ढाल उसका रूप

देखने का दर्पन और दर्शनी हुंडी के समान हैं जिसका दाम तुरत ही चुका मिलता है अर्थात् जैसा आदर सत्कार का वरताव तुम दूसरोँ से करोगे वैसाही वह तुम्हारे साथ करेगा ॥

८२—सभ्यता पुरुष के लिये वैसा ही धन है जैसा सुन्दरता स्त्री के लिये। सुथरे चाल-व्योहार और वरताव से साधारन आदमी अपना अर्थ सिद्ध कर लेते हैं, और इसके विरुद्ध रूखे सूखे सुभाव से योग्य और वुद्धिमान भी वड़ा घाटा सहते हैं। कहा है कि सभ्यता ऐसा पदार्थ है जो विना दाम के मिलता है पर उस से सव कुछ मोल ले सकते हो ॥

८३—नम्रता के लच्छन तीन हैं—(१) कड़वी वात का मीठा जवाव देना, (२) जव क्रोध वहुत भड़के चुप साधना, (३) दंड के भागी को दंड देने के समय चित्त को कोमल रखना—वुज़ुर०

८४—विद्या विना सभ्यता के ऐसी है जैसे पेड़ विना फल के—ध० प०

८५—किसी ने लुक़मान से पूछा कि तुम ने सभ्यता किस से सीखी जवाव दिया कि असभ्य लोगोँ से क्योँकि उन की जो वात मुझे वुरी लगी उस से मैँने अपने को वचाया—सादी

८६—चाल चलन कपड़े के समान है कि सपेद कपड़े पर काला रंग सहज मैँ चढ़ जाता है पर काला होने पर फिर सपेद रंग नहीँ चढ़ सकता ॥

२२—कृपा

८७—कृपा धन या कोई और पदार्थ देने का नाम नहीं है वरन चित्त की कोमलता और उदारता का। धन जो थैलो से निकलता है उसका दरजा कृपा के बराबर नहीं हो सकता जो हृदय से निकलती है॥

८८—जो आदमी कृपा-सिंध कर्ता से कृपा की आस रखता है उसे अपने आश्रितों और छोटों पर अवश्य कृपा करनी चाहिये॥

८९—जो सुमार्ग से भटके हुए हैं उन को प्यार से समझा कर राह पर लाओ। दुर्जनों के सुधार के लिये भी कोमल बात कठोर लात से बढ़ कर उपयोगी है।

२३—प्रसन्न करना

९०—लोभी को धन देकर प्रसन्न करना चाहिये, अत्याचारी और चिड़चिड़े को दीनता और मीठी बातों से, मूर्ख को उस की बात मान कर, विद्वान को सच कहने से, साध संत को निष्कपट सेवा से, भाई बंद और मित्रों को सत्कार और प्रीत से, नौकरों और स्त्रियों को दान मान से—हित०

२४—दीनता

९१—दीनता अर्थ-सिद्धि के ताले की कुंजी है परन्तु संसारी व्योहार में नवने की एक हद है धनुष की नाईं उतना

ही नवे कि उस की दृढ़ता बनी रहे नहीं तो छोटे बड़े सब दबा लेंगे और कोई काम ठीक रीत से न चलेगा—नीति

६२—दूसरों को छोटी निगाह से देखना सहज है, अपने को कठिन ॥

६३—भले गुनों के रत्न आदमी का सिंगार है परन्तु यह सब रत्न दीनता के प्रकाश बिना मंद हैं। दीनता ऐसा सिद्ध मंत्र है कि उस से सब का हृदय और स्वर्ग का द्वार खुल जाता है। जिस में दीनता का जौहर है वह हर एक को प्यारा और उस का झुकना स्वादिष्ट फल से लदी हुई डाल के नवने के समान सुहावना लगता है—चा० हा०

६४—दुशमन के झुकने और पाँव पड़ने को घात समझो जैसे जब बाढ़ का पानी दीवार के पाँव लगता है तो उसे गिरा ही कर छोड़ता है—नीति

२५—मित्रता, प्रीत

६५—बिना सचाई के प्रतीत नहीं और बिना प्रतीत के प्रीत नहीं होती ॥

६६—कहा है कि अच्छे लोगों से मित्रता जल्दी नहीं होती है पर जब हो जाती है फिर छूटती नहीं जैसे सोने का बरतन जल्दी नहीं बनता और बन जाने पर जल्दी टूटता नहीं और टूटने पर सहज में जुड़ जाता है। बुरों से मेल जल्दी हो जाता है और जल्दी हीं छूटता है और छूटने पर फिर नहीं जुड़ता

जैसे मिट्टी का बरतन जल्दी बनता और जल्दी टूटता है और टूटने पर नहीँ जुड़ता। और अच्छोँ की पहचान यही है कि ऊपर से कड़े और भीतर बहुत मुलायम जैसे नारियल का फल कि ऊपर उस का बकला कैसा कड़ा होता है परंतु भीतर मुलायम गरी और दूध भरा। और बुरे लोग ऊपर से मुलायम मिठ-बोले और प्रीत जताने वाले होते हैँ पर भीतर से अति कठोर जैसे फलोँ में बेर कि ऊपर तो छिलका और गूदा नरम और भीतर गुठली बेरस सूखी बेकाम और ऐसी कड़ी कि दाँत को तोड़ दे। अच्छे लोग पवित्र दाता संकोची शूर प्रीतवंत निर्लोभी और सत्यवादी होते हैँ—पा० भा०

६७—दोस्ती पानी और दूध की तरह मेल होने का नाम है। देखो पानी दूध से ऐसा मिल जाता है कि जब तक आप न जल जावे दूध को आग मेँ जलने नहीँ देता॥

६८—सच्चे दोस्त से जी खोल कर हाल कहने से सुख दूना और दुख आधा हो जाता है॥

६९—मित्र कम-सिन को भूल से बचाता है बूढ़े की चौकसी करता है और जिस काम मेँ उस की निबलता के कारन कसर रह जाती है उस को पूरा करता है, और जवान की भारी और हौसले के कामोँ मेँ विचार और उद्योग से सहायता करता है-अरस्तू

१००—मित्र का जब वह मिले आदर करो, पीठ पीछे प्रशंसा करो और ज़रूरत मेँ सहायता करो-तूमरस

१०१—आदमी को चाहिये कि अपना आप मित्र बन जाय (अर्थात् अपनी कसरोँ को निहारे) तो बाहरी मित्र खोजने का काम नहीं है-जैन०

१०२—सच्चा मित्र वह है जो दर्पन के समान तुम्हारे दोपोँ को तुम्हें दरसावे। जो कोई तुम्हारे अवगुनाँ को तुम्हें गुन बतावे उस का नाम खुशामदी है—ग़ज़ाली

१०३—अपनी करतूत से आदमी शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु बना लेता है-हित०

१०४—अनसमझ मित्र से समझदार शत्रु भला है और झूठा मित्र खुले शत्रु से बुरा॥

१०५—पूरा बनने के लिये या तो आदमी को सच्चे और पक्के मित्र मिलने चाहियेँ या अचूक शत्रु क्योँकि मित्र तो अच्छी सलाह से और शत्रु निरन्तर निन्दा और ताने से उसकी कसरोँ और ऐबोँ को जता देता है॥

१०६—अगर तुम जानना चाहते हो कि तुम्हारे संगी पीठ-पीछे तुम्हारी बाबत क्या कहते हैँ तो इस से समझ लो कि वह दूसरोँ की बाबत तुम्हारे सामने क्या कहते हैँ॥

१०७—दो मित्रोँ के झगड़े मेँ पंच बनना एक से हाथ धो बैठना है। इस से अच्छा तो शत्रुओँ के बीच मेँ पंच बनना है

क्योंकि सम्भव है कि जिसके हक़ मे तुम्हारा फ़ैसला हो वह तुम्हारा मित्र बन जाय–मनु

१०८—कथा है कि सिराक्यूज़ देश के दुष्ट बादशाह डायोनिसियस ने प्रसिद्ध बुद्धिमान डामन के फाँसी चढ़ाये जाने का हुक्म दिया। बेचारे ने अपनी स्त्री और बच्चोँ को जो समुद्र पार दूर देश मेँ रहते थे देख आने की आज्ञा चाही जो इस शर्त पर मंजूर हुई कि वह ज़मानत दे कि अगर फ़लाने दिन तक न लौट आवे तो ज़ामिन फाँसी चढ़ा दिया जाय। उसके मित्र पिथियस ने बिना डामन से पूछे यह शर्त मंजूर करली इस लिये डामन जेलखाने से निकाल कर यह उसकी जगह कर दिया गया। विरुद्ध हवा चलने के कारन जहाज़ के लौटने मेँ इतनी देर हुई कि फाँसी का समय आ गया और डामन न पहुँचा। पिथियस बड़ा मगन था और हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करता था कि डामन थोड़ी देर न लौटे और मैँ फाँसी चढ़ जाऊँ। जब मचान पर चढ़ाया गया तो अपने मित्र की लाचारी सर्व साधारन की दृष्टि मेँ प्रगट करने के लिये उस ने पुकार कर लोगोँ से कहा कि मेरे मित्र को देर लगने का कारन केवल हवा है जो कई दिन से उलटी चल रही थी परन्तु कल्ह से हवा अनुकूल हुई है और आस है कि वह पहुँचता ही होगा। फिर इस भय से कि कहीँ डामन पहुँच न जाय फाँसी देने वाले से विनती की कि देर न करे। उसी समय एक घोर शब्द सुनाई दिया "ठहरो ठहरो मैँ आगया" और डामन बदहवास घोड़ा भगाता हुआ ज़ीन से आ कूदा और मचान पर चढ़ गया, केवल इतना पिथियस से बोला "धन्य ईश्वर कि तुम बच गये"। पिथियस ने कहा

"हाय तुम दो मिनिट पीछे क्यों न पहुंचे" । यह समा देखकर कठोर बादशाह भी हका बक्का हो गया और पहली बार ज़िन्दगी में उसके जी पर भलाई का ऐसा असर हुआ कि तख़्त से उतर कर बोला कि मैं ऐसी अनूप जोड़ी को खंडित न करूंगा बल्कि चाहता हूं कि मैं आप इनका सा बन जाऊं ॥

१०९—कहा है कि प्रीत का असर अचरजी होता है जिससे बाघ बकरी बन जाता है। इसके दृष्टांत में जापान देश के कीटो नामक हकीम ने एक कथा लिखी है कि एक धनवान ज़मींदार का लड़का महा दुष्ट कुकर्मी था, जब मा बाप समझाते तो उन से कहता कि तुम ने मुझे झक मारने को जनमाया। होते होते उस की बदनामी की दुर्गंधि यहाँ तक फैली कि पिता के सब इष्ट मित्र ने सलाह ठहराई कि उसे बाप के दाय (धन) से विमुख करके घर से निकाल दें। जिस समय यह समाचार लड़के को मिला वह अपने कुसंगियों के साथ मदिरा पी रहा था, तुरत हाथ में कटार लेकर सभा के कमरे के पास गया और किवाड़ के छेद से झाँका तो देखा कि उस के सब नातेदारों ने एक लेख पर दस्तख़त और मुहर की लेकिन जब बूढ़े बाप ने अपनी मुहर उस काग़ज़ पर लगाने को उठाई तो लड़के की मा ने उस का हाथ पकड़ लिया और विलाप करती हुई हाथ जोड़ कर बोली हे मेरे पति मने आज तक कि पचास बरस तुम्हारे साथ रही हूं तुम से कभी कुछ नहीं माँगा आज यह माँगती हूं कि मेरे कलेजे को मेरी कोख से न निकालो मुझे उस के लिये आप भिखमंगी बनना मंज़ूर है पर उसे गली गली भीख माँगते नहा

देख सकूँगी ! यह सुन कर बाप भी अधीर होकर रोने लगा और मुँहर को हाथ से डाल दिया । मा बाप की इस प्रीत के प्रवाह ने लड़के के जी पर ऐसा गहरा असर किया कि वह जहाँ का तहाँ बुत सा खड़ा रह गया, थोड़ी देर पीछे साव-धान होकर कमरे में आया और मा बाप के चरनों पर गिरा और प्रन किया कि आज से मैंने सब कुकर्म छोड़े और अपने को तुम्हारे प्यार के योग्य बनाऊँगा । उस ने ऐसा ही किया और आगे चल कर कुल-भूषन हुआ ।—कीटो

२६--भाईचारा

११०—किसी विद्वान् ने मनुष्य की उपमा तकिये की खोली से दी है जो रंग बिरंग की होती है पर सब के भीतर रुई एकही रहती है । यही दशा मनुष्य के चोले की है कि कोई गोरा कोई काला कोई पीला कोई लाल रंग का, और कोई सज्जन कोई दुर्जन होता है, पर अंतर में सब के एक ही परम पुरुष की अंश बिराजमान् है और सब एकही परम पिता के पुत्र होने से आपस में भाई हैं ॥

२७--मेल, एका

१११—भलों का आपस में भलाई के लिये, मेल अडिग होता है और उसी का नाम मित्रता है, बुरों की बुरे कामों के लिये मित्रता असल में शत्रुता है और बहुत काल तक ठहर नहीं सकती--का० था०

११२—एक से एक मिल कर ग्यारह होता है परन्तु अलग रहने से एक का एक ही बना रहता है लेकिन याद रक्खो कि एका नाम अच्छे और नीति-संयुक्त कामों के लिये मिलने का है नीति-विरुद्ध कामों के लिये मेल का नाम गुट है ॥

———

११३—एक बूढ़े बाप ने मरते समय अपने बेटों को एक बँधा मुट्ठा डाँठियों का दे कर कहा कि अपना अपना बल लगाओ देखो कि उसको बिना खोले तोड़ सकते हो या नहीं। हर एक ने कोशिश की पर न तोड़ सका, तब बाप बोला कि अब मुट्ठे की डोरी खोल कर तोड़ने की कोशिश करो, जब ऐसा किया तो अलग होने पर सब डाँठियाँ सहज में टूट गईं। इस पर बूढ़ा बोला कि इस से यह सीख लो कि जब तक तुम भाइयों में एका है तुम निर्भय हो, पर अलग होने पर जो चाहे मसल दे सकता है—लुक०

———

११४—बुरे काम के लिये एका या गुट करने का परिनाम कभी अच्छा नहीं हो सकता। कथा है कि तीन आदमियों ने सलाह की कि मिलकर धन कमावें। सब से सहज और बेलग्गत का रोज़गार चोरी का जान पड़ा सो कुछ काल में चोरी से और गला घोंट कर बहुत कुछ कमाया। जब मनमाना धन बटुर गया तो एक दिन फिर सलाह की कि उमर भर चैन से कटने का ठिकाना हो गया तो अब इस जोखों के काम को क्यों न छोड़ दें जिस में अगर किसी दिन पकड़े गये तो फाँसी लटका दिये जायँगे। राय ठहरी कि आज ही तीनों मित्र बैठ कर खूब खाँय पियें और फिर कमाई को बराबर बाँट कर अपने अपने घर सिधारें। जब उन में से एक

भोजन लेने हाट को गया तो बाक़ी दो ने सलाह की कि जब वह लौट कर आवे तो उसे मार डालो जिस से कि हम दोनों को एक एक तिहाई के बदले आधा आधा माल मिल जायगा और उधर उस तीसरे ठग ने सोचा कि अपने दोनों साथियों को क्यों न मार डाले जिस से सब माल उसी के हाथ लगे इस लिये खाने के एक हिस्से में संखिया मिला दी। जब लौट कर आया और सब खा पी चुके तो दो ने तीसरे को जो खाना लाया था तलवार से मार डाला और थोड़ी ही देर पीछे विष के प्रभाव से आप भी मर गये। धीरे धीरे यह हाल पुलीस को मिला और उसने लक्ष्मी को जो लोथों की दुर्गंधि में निरादर पड़ी थी अपने घर लाकर आदर का स्थान दिया!

२८-गुरू

११५—गुरू या अगुआ ख़ूब समझ कर धारन करना चाहिये। देखो लड़ाई के समय एक शूर आगे हो तो सब उस के पीछे लड़ने को वीर बन जायँ और एक कायर लड़ाई छोड़ कर आगे से भागे तो सब उस के साथ भाग निकलें—पा० भा०

२९-पुरुषार्थ और प्रारब्ध, तदबीर और तक़दीर

११६—इस बात का विवाद सदा से चला आता है कि मनुष्य की इच्छा स्वतंत्र है या परतंत्र अर्थात् प्रारब्ध के आधीन। इसका जवाब यह है कि मालिक ने हर एक को स्वतंत्र इच्छा दी है यद्यपि वह मालिक के बाँधे हुए रचना-सम्बन्धी नियमों के विरुद्ध नहीं जा सकता। और न पूर्व

जन्म के संस्कार अर्थात् कर्मों के फल से बच सकता। यदि ऐसा मान लें कि मनुष्य की इच्छा निरी परतंत्र है अर्थात् जो कुछ वह करता है उसके लिये बेबस है तो भलाई बुराई का भेद उठ जायगा कोई अपने बुरे काम का अपने को ज़िम्मेदार और उसके दंड का भागी न समझेगा और सत मार्ग भ्रष्ट हो जायगा। इसके सिवाय उद्योग की हानि और आलस की वृद्धि होगी।

३०-कर्म

११७—भोजन करने से पेट भरता है न कि उपास करने से, चलने से आदमी आगे बढ़ता है न कि बैठ रहने से, बोलने से आदमी अपना आशय प्रगट करता है न कि चुप रहने से, इस भाँत मनुष्य के जीवन में कर्म ही प्रधान है—यो० वा०

३१-उद्योग

११८—संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिस को उद्योगी मनुष्य प्राप्त न कर सके—सोम०

११९—केवल मनोर्थ से काम नहीं सरता ; हौसला है तो कोशिश करके काम सिद्ध करो। भूखा सिंह जो सो रहा है उस की माँद के पास हिरन आप नहीं जाता—हित०

१२०—वीर पुरुष लड़कर रन जीतते हैं। यद्यपि प्रारब्ध प्रधान है पर उद्योग उस का मंत्री और कार्य-कर्ता है। प्रारब्ध को पटक कर आत्म-शक्ति से पुरुषार्थ दिखाओ। जो तुम्हारा उद्योग निष्फल हो तो लाज काहे की—हित०

१२१—अर्थ-सिद्धि (कामयाबी) की दो कुंजियाँ हैं बुद्धि और आशा-संयुक्त उद्योग, बिना इन दोनों के हाथ आये आदमी संसार में बढ़ नहीं सकता ॥

१२२—जिसने किसी काम के पूरा करने का प्रन ठान लिया वह उस को अवश्य कर लेगा—कालिदास

१२३—किसी बात के निर्नय में जल्दी न करो पर जब समझ लिया तो दृढ़-संकल्प रहो। करने के पहले उस काम की हानि लाभ भली भाँति मन में तोल लो और फिर उस के करने में देर न करो परिनाम जो कुछ हो ॥

१२४—किसी कठिन काम के करने में हिम्मत हार देना कायरता का लच्छन है, यदि उसे दूसरे कर सकते हैं तो तुम क्यों नहीं कमर कस कर तैयार हो जाते—मा० आ०

१२५—कुल मालिक पर दृढ़ विश्वास रखकर आदमी असम्भव काम कर सकता है। असम्भव का शब्द केवल मूर्खों के कोष में मिलता है—फ़ोसा०

१२६—इसी के साथ किसी काम में हाथ डालने के पहले अपने पुरुषार्थ को तोल लो। बहुत ऊँचे चढ़ जाने से गिरने का डर और बहुत नीचे पड़े रहने से कुचल जाने का भय होता है ॥

१२७—कर्त्ता सब पशु पंछी को आहार देता है पर उन की माँद या खोंते में नहीं डाल आता—सोम०

१२८—धन की मिठास उसी को मिलेगी जिस ने उसकी कमाई में मिहनत की कड़वाई को चक्खा है—चीन

१२९—अपने हाथ की कमाई का भरोसा रक्खो औलाद का नहीं—मसल है कि एक बाप-दस बेटों का पालन कर सकता है पर दस बेटे एक बाप का पालन नहीं कर सकते—फ़ीसा०

१३०—मामूली जतन से न चूको पर नतीजा मालिक पर छोड़ो। हज़रत मुहम्मद ने कहा है कि मालिक पर भरोसा करो पर ऊंट के पाँव बाँध कर रक्खो—त० औ०

३२-अनाधीनता, स्वतंत्रता

१३१—स्वतंत्र और अनाधीन वही कहा जा सकता है जो अपने काम के लिये दूसरे का आश्रित नहीं है। संसार में भली भाँत उसी के अर्थ की सिद्धि होती है जो दूसरों की सहायता का भरोसा न रखकर फुरती के साथ अपने काम आप करता है। मनुजी ने कहा है कि दूसरे का आसरा रखने से कष्ट उपजता है, अपने बूते पर भरोसा रखने से सुख प्राप्त होता है—हाँ कुल मालिक पर भरोसा अवश्य रक्खो जो सब उद्योग की जान है॥

३३-परिश्रम

१३२—बिना परिश्रम के कोई बढ़ नहीं सकता। जो तुम्हारी योग्यता भारी है तो परिश्रम उसको और बढ़ा देगा और जो साधारन है तो उसकी कमी को पूरा कर देगा। ढंग से परिश्रम करने वाले के लिये कोई काम कठिन नहीं है—डिमास०

१३३—बिना परिश्रम के न लोक का सुख मिलता न परलोक का। ईश्वर ने यह रचना ही ऐसी की है जहाँ हर बात के लिये परिश्रम करना पड़ता है—खाने के लिये अन्न बिना हल चलाये नहीं उपजता, पीने को पानी बिना कुँआ खोदे या नदी किनारे गये नहीं मिलता, शरीर की आरोग्यता बिना मिहनत किये क़ाइम नहीं रहती, और अंत में ऊँचे सुख-स्थान में बासा बिना यहाँ कमाई किये नहीं प्राप्त होता॥

१३४—कथा है कि एक बार किसी गँवार का छकड़ा ऐसी कीचड़ में धँस गया कि बैलों के बल से पहिया किसी तरह नहीं निकलता था। बेचारा निरास होकर रोने और हनुमान जी को मनाने लगा कि अपना बल दें। हनुमान जी ने आज्ञा की कि बैठे बैठे पुकार करने से अर्थ की सिद्धि न होगी, फेंटा बाँध कर खड़ा हो जा, बैलों को ज़ोर से चाबुक लगा और अपने शरीर का पूरा बल लगा कर पहिये को ढकेल—इसी रीति से मेरी गुप्त सहायता मिल सकती है॥

३४-धीरज

१३५—धीरज या सब्र तन मन दोनोँ की पीड़ा के लिये उपकारी लेप और चैन के द्वारे की कुंजी है। धीरज से सब कठिनाई दूर हो जाती है यद्यपि बुद्धिमान का काम है कि जहाँ तक बन सके उस को आगे से रोकने का जतन करे। कबीर साहिब ने कहा है—

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥

३५-काम की धुन

१३६—यदि धीरज के साथ ही काम की धुन भी लगी रहे तो हर गाढ़ मेँ विजय ही विजय है; पर याद रक्खो कि धुन और हठ मेँ बड़ा भेद है—एक तो सावधान लगातार उद्योग का नाम है और दूसरा अंधी पच्छ का—सुकरात

३६-लग कर ध्यान और बंधेज से काम करना

१३७—जो काम करो उसे पूरे तौर पर करो—"What is worth doing is worth doing well"—लोग इस सीख को दुनियाँ के मामूली कामोँ मेँ भूल जाते हैं पर याद रक्खो कि जो कोई छोटे छोटे कामोँ को भी ध्यान से करने की आदत डाल लेगा वही बड़े कामोँ को धीरज से पूरा कर सकेगा नहीं तो थक और घबरा जायगा। ऐसे सुभाव से मन की ऊचला चाल धीमी पड़ती है और जिस का सुभाव मन पर रोक लगाने का हो गया वही सच्चा शूर बीर है और संसार

की बिपतों को सहज में झेल सकेगा। विचारवान के लिये जीवन में कोई छोटी से छोटी बात ऐसी नहीं है जिस में मालिक की मौज दीख न पड़े और जिस से वह भारी सीख न ले सके॥

१३८—जैसे यह बात ज़रूरी है कि जो काम किया जाय वह पूरे तौर पर ध्यान से किया जाय उस से बढ़ कर यह बात है कि वह नियम से किया जाय अर्थात् उस के करने का समय बाँध लिया जाय जिस में कदापि टूट न पड़े; यदि कभी किसी कारन अवकाश न मिले तो एक ही छिन को उस में हाथ लगा दिया जाय नहीं तो ढीला पड़ जायगा। इस विषय में एक योग्य पुरुष की सीख याद रखने लाइक़ है। वह एक पुस्तक बना रहे थे जिसे हर रोज़ सवेरे एक विद्यार्थी से दो घंटे लिखवाते थे। एक दिन किसी आवश्यक काम पर बाहर जाना था इस लिये उन्होंने विद्यार्थी को कुछ रात रहे बुलाया और जब वह दूर से चल कर आया तो दो मिनिट में एक पंक्ति लिखवा कर बोले कि आज का काम हो गया अब जाव। विद्यार्थी झुँझला उठा कि इतनी ही देर काम करने के लिये मेरी सवेरे की नींद ख़राब कर के दो मील दौड़ाया। जवाब दिया कि हाँ लेकिन मैं ने तुम्हें ऐसा सबक़ पढ़ाया है जिस को याद रक्खोगे तो लोहे से कंचन बन जावगे, यानी काम में नाग़ा कभी न पड़ने दो क्योंकि इस आदत से बड़ी ख़राबी पैदा होती है॥

३७—हलूचली, जल्दबाज़ी

१३६—हल्चली और जल्दबाज़ी काम की बिगाड़ने वाली है। जल्द चलने वाला जल्द थक जाता है—सुलैमान

१४०—जो आदमी झटपट बेसमझे बात मुँह से निकाल देता है उस से मूर्ख भला॥

३८—लड़कों के लिये सीख

१४१—(१) मा बाप का पूरे तौर पर हुक्म मानो, (२) सब नातेदारों से प्यार रक्खो, (३) अपने मुँह को दर्पन में देखो अगर सुन्दर है तो ऐसा काम न करो जिस से उस में धब्बा लगे और अगर कुरूप है तो सचाई भलाई और परोपकार के बरताव से उसको सुन्दर बनाओ, (४) जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसे मिट्टी पर लिखो भलाई को पत्थर पर—सुक़रात

३९—सुधार

१४२—हर सुधार को तीन फाटकों से धँसना पड़ता है—(१) हँसी, (२) कठहुज्जती, (३) स्वीकार॥

१४३—मनुष्य का सुभाव है कि वह हर नई बात के पीछे दौड़ता है और पुरानी की परवाह नहीं करता पर अचरज की बात है कि पुरानी रीत को चाहे यह कैसी ही हानिकारक हो छोड़ कर नई लाभ-दायक जुगत के ग्रहन करने में डरता है॥

१४४—जिस किसी का परमार्थ कमाने से भी सुभाव नहीँ सुधरा तो समझ लो कि उसकी आत्मा पर कुछ असर नहीँ हुआ—अष्टपाद

४०—कीर्त्ति

१४५—नाम वह है जो तुम अपनी करतूत से कमाओ, मा बाप का धरा नाम तो सिर्फ़ निशान या पता है—अफ़०

१४६—नाम या कीर्ति मेँ एक बार धब्बा लग जाने से फिर नहीँ छूटता ॥

१४७—संसार मेँ कीर्ति के बराबर कोई धन नहीँ है क्योँकि जब शरीर मिट्टी मेँ मिल जाता है तो यही बनी रहती है, और इस से बढ़ कर कोई पैतृक-धन सन्तान के लिये नहीँ छोड़ा जा सकता ॥

१४८—जो कोई अपनी उन्नति या कीर्ति चाहता है उसको छः अवगुनोँ से बचना चाहिये—अधिक सोना, ऊँघना, डर, क्रोध, आलस, टाल मटोल—महा०

४१—हिम्मत, साहस, बहादुरी

१४९—अच्छी बात की पच्छ मेँ किसी तरह की जोखोँ या मूर्खोँ के ताने से न डर कर हिम्मत के साथ यथार्थ काम करने का नाम साहस या बहादुरी है, पर इस मेँ हलवली या अविचार का अंग न आना चाहिये ॥

१५०—अपने मन की तरंगोँ को रोकना बड़ी भारी बहादुरी है ॥

४२—बड़ोँ का संग

१५१—समझदार को चाहिये कि सदा बड़े का संग करे उस से अनेक प्रकार का सुख मिलता है जैसे बड़े पेड़ के आसरे जो चिड़ियाँ रहती हैँ वह खाने को बहुत फल पाती है और छाये मेँ सदा सुख भोगती हैँ-ध० प०

१५२—बड़े लोग समुद्र के समान हैँ जिसका यह गुन है कि उस मेँ कितनी ही मैली नदियाँ आकर समाती हैँ पर वह गदला नहीँ होता ॥

१५३—बड़ोँ की सीख संसार की कीचड़ मेँ न फँसने के लिये लाठी का काम देती है—त० औ०

१५४—बड़ोँ की आज्ञा पालन करना मनुष्य का धर्म है, जो इस मेँ चूकेगा वह आप कभी आज्ञा करना न सीखेगा-मनु

१५५—बड़ोँ से लड़ना अपना घात करना है—सादी

४३—संग का प्रभाव

१५६—भलों का संग करो कुसंग से बचो एक योग्य पुरुष का कहन है कि यदि कोई मुझे इतना बता दे कि उसके संगी कौन हैँ तो मैँ उसका चाल व्योहार तुरत कह सकूँगा —सेनेका

१५७—अच्छी संगत मनुष्य को सुर बना देती है। देखो पारस पत्थर के संग से लोहा कंचन और चंदन के पेड़ के संग से साधारन वृक्ष सुगंधित बन जाता है। इस के विरुद्ध बुरी संगत आदमी को असुर बना देती है। बुद्ध महाराज ने कहा है कि झाड़ी में रहना कंद मूल खाना पेड़ की छाल पहिनना घास पर सो रहना और जंगली जानवरों का संग नीच की संगत से अच्छा है॥

१५८—कुपात्र और ओछे की संगत कभी न करनी चाहिये वहाँ सिवाय दुख के सुख नहीं मिलता बरन साथ करने वाले के हाथ अपजस आता है, जैसे दूध का बरतन मदिरा बेचने वाले के हाथ में हो तो देखने वाले मदिरा ही का बरतन समझेंगे। और दुष्ट का संग अपना बुरा असर पैदा किये बिना नहीं रहता उसका सुधार असंभव है जैसे कालकूट विष ने शिवजी के कंठ में जगह पाई तब भी कालौंछ न छोड़ी बरन उन को नील-कंठ बना दिया॥

१५९—रोम का एक चित्रकार तसवीर खींचने के लिये किसी ऐसे आदमी की खोज में था जो भोलेपन और दीनता का रूप हो। आखिर को बरसों की खोज में उस को एक बालक ऐसा मिला, उस को प्रार्थना के आसन से बैठा कर तसवीर खींची जो ऐसी हुई कि उस की नक़लें छाप कर उसने हज़ारों रुपये कमाये। दस पंद्रह बरस पीछे उसी चित्रकार के मन में यह उचंग उठी कि दुष्टता का चित्र बनावे। तलाश करते करते नगर के जेलख़ाने में उसे बड़े कठोर और भयानक रूप का एक क़ैदी दीख पड़ा जिस का चित्र उसने

खींचा और पहले की भोली तसवीर से मुक़ाबला करके दिल में खुश हुआ। यह देख कर क़ैदी ने अचरज से पूछा कि तुम क्या कर रहे हो। मुसव्विर ने दोनों तसवीरों का रूपक बतला कर उसको दिखलाया जिस पर वह दाढ़ मार कर रोने लगा और बोला कि वह पहला भोला और दीन चित्र भी मेरा ही है कुसंग करके मैं इस दुर्दशा को पहुँचा हूँ। उसी दम से उस को ऐसा पछतावा पैदा हुआ कि थोड़े ही समय में सच्चा, सुकर्मी, और अच्छे रंग रूप का हो गया॥

४४-नमूना, मिसाल

१६०—नमूना और मिसाल सब से बड़ा उस्ताद है जो बिना सैन बैन के सिखाता है। यह एक व्यवहारिक पाठशाला है जहाँ बिना जीभ हिलाये कर्म से शिक्षा होती है। मनुष्य सुभाव ही से कान से अधिक अपनी आँख पर भरोसा करता है इस लिये जीभ से सिखाने का असर उतना जल्द नहीं होता जितना किसी जीते या निर्जीव नमूने का आँख से देखकर॥

१६१—बुरी मिसाल के बराबर कोई चीज़ ख़राब असर पैदा करने वाली नहीं है जैसे एक अशुद्ध घड़ी सैकड़ों आदमियों को धोखा देकर उनका अकाज कर सकती है॥

४५—जीव-दया

१६२—केवल अपने ही वर्ग को नहीं बरन पशु पंछी जीव जंतु सब को सुख पहुँचाना मनुष्य चोले का धर्म है, यदि-

सुख न पहुँचा सकते हो तो उन्हें दुख से तो बचाओ। हिन्दू शास्त्रोँ मेँ इसकी बड़ी महिमा है लेकिन इस विषय मेँ एक मुसलमानी कथा भी अनूठी लिखी है—मुहम्मद ग़ज़नी का बाप सुबुक्तगीँ तख़्त पर बैठने के पहले अलप्तगीँ बादशाह का ग़ुलाम था और अपनी ग़रीबी के ज़माने मेँ अक्सर एक टट्टू पर चढ़ कर मैदान मेँ शिकार के लिये निकल जाया करता था। एक दिन उसने एक हिरनी को बच्चे के साथ चरते देख कर बच्चे को पकड़ लिया और उसकी टाँगेँ बाँध कर टट्टू पर धर लिया और घर की ओर लौटा। थोड़ी देर पीछे मुड़ कर देखा तो बच्चे की मा आँखोँ मेँ आँसू भरे सोग का रूप बनी पीछे चली आती है। यह लीला देख कर सुबुक्तगीँ को ऐसी करुना उमँगी कि उस ने तुरत हिरनी के बच्चे को टट्टू से उतार कर छोड़ दिया जिसे पा वह हिरनी मगन हो कर उछलने लगी लेकिन फिर भी सुबुक्तगीँ पर अपनी विशाल दृष्टि जमाये रही जैसे कोई आँखोँ से गुन गाता हो। उसी रात को सुबुक्तगीँ ने सुपने मेँ पैग़म्बर साहिब का दर्शन पाया जिन्होँ ने आज्ञा की कि जो दया तू ने एक अनाथ और दुखी पशु पर की उस को ख़ुदा ने बहुत पसंद फ़रमाया और तेरा नाम बादशाहोँ की फ़िहरिस्त मेँ लिखवा दिया, आगे को यही बरताव अपनी प्रजा के साथ जारी रखना दया भाव कभी न छोड़ना और सदा याद रखना कि कृपा और करुना मालिक के दया-भंडार की लोक और परलोक दोनोँ के लिये कुंजी है॥

१६३—कर्त्ता को वह मत अधिक प्रिय है जिस मेँ सृष्टि के सब जीवोँ के साथ दया भाव है—वल्लभ

४६—मातृ सेवा

१६४—कथा है कि एक भक्त अपने गुरू की समाध की जात्रा को जा रहा था रास्ते में सपना हुआ कि तेरी बूढ़ी मा जो बीमार है उस की जा कर सेवा कर इस में मेरी विशेष प्रसन्नता होगी इस पर वह भक्त घर लौट आया और मा की सेवा में तन मन से लग गया जिस के प्रताप से उसे साक्षात दर्शन मालिक के घर बैठे मिले—पा० भा०

४७—राज-भक्ति

१६५—राज-भक्ति का भारी दरजा धर्मशास्त्र और नीति दोनों में है। राजा या बादशाह के द्रोही का लोक परलोक दोनों बिगड़ता है। बिना मालिक के बनाये कोई बादशाह नहीं बन सकता इस लिये बादशाह को सृष्टि की संसारी सम्हाल के लिये मालिक का प्रतिनिधि समझो। अपना प्रतिनिधि हर कोई सब से योग्य मनुष्य को चुनता है यद्यपि जीव अल्प-दृष्टि होने के कारन इसमें धोखा खा सकता है परन्तु मालिक जो सर्वज्ञ है वह भूल के परे है उसका चुनाव सदा निर्दोष होगा। ऐसी सूरत में मालिक के प्रतिनिधि के साथ द्रोह या विरोध रखने से आदमी अपने को लोक और परलोक दोनों में दंड का भागी बनाता है॥

४८—राज-धर्म्म

१६६—कहा है जहाँ राजा नहीं होता वहाँ प्रजा चैन से नहीं रहने पाती, जैसे समुद्र में जहाज़ बिना माँझी के ठिकाने

नहीं लगता उसी तरह प्रजा का धर्म बे राजा के नहीं निभता। और जो राजा प्रजा को पुत्र के समान नहीं पालता उस को संसार में यश नहीं मिलता है, उसके हक़ में राज पदवी का पाना न पाने से बुरा है क्योंकि राज थोड़े दिन का है सदा न रहेगा और यश अपयश धर्म अधर्म सदा बने रहते हैं-हित०

४९-स्वामी-भक्ति

१६७—कथा है कि किसी अमीर का एक ग़ुलाम था उसे साथ लेकर एक दिन अमीर बग़ीचे को गया और एक ककड़ी तोड़ कर खाने को दी। वह उसे बड़े स्वाद से खा रहा था कि अमीर का भी खाने को मन चला और उस से एक टुकड़ा लेकर चखा तो ऐसी कड़वी पाई कि मुँह बनाकर थूक दिया और ग़ुलाम से पूछा कि तू इसे क्यों कर ऐसे स्वाद से खा रहा है। ग़ुलाम बोला कि जिस के हाथ से मैंने अनेक पदार्थ स्वाद के खाये हैं उसके दिये हुए एक कड़वे फल पर मुँह बनाना और उस की दात का तिरस्कार करना नाशुकरापन है। अमीर उस की इस बात से इतना खुश हुआ कि उसे बहुत कुछ इनाम दे कर ग़ुलामी से छोड़ दिया-अ० मु०

५०-नमूना, मिसाल

१६८—नमूना और मिसाल सब से बड़ा उस्ताद है जो बिना सैन बैन के सिखाता है। यह एक व्यवहारिक पाठशाला है जहाँ बिना जीभ हिलाये कर्म से शिक्षा होती है। मनुष्य सुभाव ही से कान से अधिक अपनी आँख पर भरोसा करता है इस लिये जीभ से सिखाने का असर उतना जल्द नहीं

होता जितना किसी जीते या निर्जीव नमूने का आँख से देखकर।

१६९—बुरी मिसाल के बराबर कोई चीज़ ख़राब असर पैदा करने वाली नहीं है जैसे एक अशुद्ध घड़ी सैकड़ों आदमियों को धोखा देकर उनका अकाज कर सकती है॥

५१-अहंकार

१७०—घमंड या अहंकार मूर्खता का चिन्ह है—जिस तरह देह में जहाँ लोहू या सत्ता की कमी है वहाँ वायु भर कर बदन फूल आता है ऐसे ही जहाँ बुद्धि का घाटा है वहाँ अहंकार भर कर मन फूल आता है—बेकन

१७१—एक महात्मा सतसंग में बचन फ़रमा रहे थे हज़ारों आदमी जमा थे जिनके ऊपर उसका बड़ा असर मालूम होता था। वहाँ एक बड़े विद्वान पंडित भी मौजूद थे उन को बड़ी ईर्षा हुई कि मैं तो इन महात्मा से अधिक पढ़ा लिखा हूँ मेरे बोलने का इतना असर लोगों पर क्यों नहीं होता। महात्मा अंतरजामी थे उस के जी का हाल समझ लिया औ बचन के सिलसिले में कहा कि रोशनी के गिलास की ओर देखो जिस में पानी और तेल भरा है, दोनों आपस में वाद विवाद कर रहे हैं—पानी कहता है कि मैं सब से बड़ा हूं सारी सृष्टि का जीवन-आधार हूँ जो मैं न हूँ तो सब प्यास से तड़प कर मर जावें और अन्न की उत्पत्ति भी मेरे बिना नहीं हो सकती, तेरा दरजा मेरे बराबर नहीं है, फिर क्या सबब है कि तू मेरे सिर पर चढ़ कर बैठा है। तेल जवाब देता

है कि तुझे अपने सर्वोपर होने का घमंड है और मैं दीन आधीन हूँ। ज़रा सोच कि पहले मेरा बीज विष्ठा मिली धरती में दबाया गया जब पैाद निकली और छीमी पकी तो लोगों ने काटा कूटा फिर कोल्हू में डाल कर मेरा सिर पेरा और अब मैं आप जल बल कर उन्हीं कष्ट देने वालों को प्रकाश दे रहा हूँ इसलिये मालिक ने मुझे तुझ पर बड़ाई दी है। यह बचन सुन कर पंडित लज्जित हुआ और महात्मा के चरनों पर गिरा॥

५२--ऊँचा कुल और ऊँची जाति

१७२--ऊँची जाति, पुराना, कुल, बाप दादा से पाया हुआ धन, लड़के वाले, रूप रंग आदि, का जो घमंड करे उस के बराबर कोई मूर्ख नहीं क्योंकि इनके पाने के लिये कौन लियाक़त उस ने ख़र्च की। किसी बुज़ुर्ग ने कहा है कि जो लोग बड़े घरांने के होने की डींग मारते हैं वह कुत्ते के सदृश हैं जो सूखी हड्डी चिचोड़ कर मगन होता है॥

१७३--बड़े विद्वान् और योग्य और देश-हितैषी पुरुष जिन की कीर्ति की ध्वजा हज़ारों बरस से संसार में फहरा रही है प्रायः नीचे कुल से उत्पन्न हुए थे। ऊँचे कुल और ऊँची जाति का होने से बड़ाई नहीं आती। रचना पर ध्यान करो तो यही दशा जड़ खान तक चली गई है कि छोटी वस्तुओं में बड़े रत्न धरे होते हैं--देखो कँवल कीचड़ से निकलता है, सोना मिट्टी से, मोती सीप से, रेशम कीड़े से ज़हरमुहरा

मेंडक से, कस्तूरी मृग से, आग लकड़ी से, शहद मक्खी से-बुद्ध

१७४—महान पुरुष के लच्छन क्या हैं—(१) जिसे दूसरे की निन्दा झूठी लगती है और ऐसी बात को अनसुनी करके किसी से उस की चरचा नहीं करता; (२) जिसे अपनी प्रशंसा नहीं सुहाती पर दूसरे की प्रशंसा से हर्ष होता है; (३) जो दूसरों को सुख पहुँचाना अपने सुख से बढ़ कर समझता है; (४) जो छोटों से कोमलता और दयाभाव और बड़ों से आदर सतकार के साथ बरतता है: (५) जो खेल में भी किसी के साथ चालाकी नहीं करता—खुलासा यह कि जो दूसरों के साथ वैसाही बरताव करता है जैसा कि वह अपने लिये उन से चाहता है, ऐसे पुरुष को महा पुरुष कहते हैं; केवल धन या ऊँचा कुल और जाति या अधिकार से महत्व नहीं आता —का० था०

५३--डींग मारना

१७५—बात पर बहुत ज़ोर देना या डींग मारना ओछे पात्र और बुद्धि के घाटे का चिन्ह है, जैसे कम तेल के दीवा की बत्ती को दम पर दम उसकाते रहने की ज़रूरत होती है—मसल है "थोथा चना बाजे घना" ॥

५४--लालच, तृष्णा

१७६—लालची सब की आँखों से गिर जाता है। वह तालाब की मछली की तरह चारे के लिये मुंह में काँटा चुभा

कर खप मरता है और दंभ कपट और सब पाप कर्म का भागी होकर अपना लोक और परलोक दोनों बिगाड़ देता है। दूलन०

१७७—जुवा लालच का बेटा और बहुव्यय (फ़ुज़ूल ख़र्ची) का बाप है—बेकन

[तात्पर्य यह है कि लालची आदमी पहले तो दूसरों की जमा मारने को जुवा खेलना शुरू करता है पर जब चसका लग गया तो हिम्मत खुल जाती है और बड़े बड़े दाँव लगा कर पल्ले की जमा भी खो बैठता है]। ॥

१७८—"अहलि-दवल" में "वाव" इल्लत की जो लगी है और "और" चाहतो है अगर छिल जाय तो "अहलिदिल" बन जाय—रासिख

[टीका—फ़ारसी में "अहलि-दवल" धनी को और "अहलि-दिल" महात्मा को कहते हैं; वाव (,) को हरफ़ि-इल्लत कहते हैं जिस के अर्थ "और" के हैं और इल्लत बीमारी का नाम है]।

१७९—की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसु दिन चहै, जीवन करै बेहाल॥
त्रिस्ना अगिन प्रलय किया, त्रिपत न कबहूं होय।
सुर नर मुनि और रंक सब, भस्म करत है सोय॥
—कबीर

१८०—बुढ़ापे में लालच बढ़ाना बड़ी मूर्खता की बात है है क्योंकि जब जात्रा के छोर पर पहुंचे तो बहुत सामग्री जुहाने का क्या प्रयोजन रहा—सिसिरो

५५--संतोष

१८१—संतोष ऐसा पारस है कि जिस वस्तु में छू जाय वह सोना बन जाय ॥

१८२—संसार में आरोग्यता के समान ईश्वर की कोई दात नहीं और संतोष के बराबर कोई धन नहीं—ध० प०

१८३—सम्पत में अपने से ऊँचों को निहारो तो न फूलोगे क्योंकि कितने ही तुम से बढ़ कर भागवान दिखाई देंगे और विपत में अपने से नीचों को देखो तो संतोष होगा क्योंकि कितने ही तुम से अधिक भागहीन दीख पड़ेंगे—पा० भा०

१८४—इक रोटी अपनी भली, चाहे जव की होय।
टटकी वासी गम नहीं, रूखी सूखी दोय ॥ १ ॥
एक बसन तन ढकन को, नया पुराना कोय।
एक उसारा रहन को, जहँ निर्भय रहु सोय ॥ २ ॥
राज पाट के ठाठ से, बढ़ि कै समझै ताहि ॥
सीलवान संतोष-युत, बुद्धी निर्मल जोय ॥ ३ ॥

१८५—शेख़ सादी लिखते हैं कि किसी समय में मेरे पास जूता न था और नंगे पाँव चलने से दुखी था लेकिन एक दिन मस्जिद में एक अपाहिज को देखा तो ख़ुदा का शुकर किया कि मुझे पाँव तो दिये हैं—सादी

१८६—एक बादशाह ने मरते समय आज्ञा की कि मेरे

मरने के सबेरे पहला आदमी जो नगर के फाटक में घुसे वह बादशाह बनाया जाय। दैव-गति से सवेरे एक भिखमंगा फाटक में घुसा सो उसे लोगों ने लाकर राजगद्दी पर विठा दिया। थोड़े ही दिनों में उसकी अयोग्यता और निवलता से कितने ही राजमंत्री और सूबे स्वतंत्र हो बैठे और आस पास के बादशाहों ने चढ़ाई करके बहुत सा हिस्सा उस के राज का छीन लिया। बेचारा भिच्छुक राजा इन उत्पातों से उदास और दुखी था कि उसका एक पहला साथी जो रामत पर गया हुआ था लौट कर आया और अपने पुराने मित्र को उस का अचरज भाग जगने पर वधाई दी। बादशाह बोला भाई मेरे अभाग पर रोओ क्योंकि भीख माँगने के काल में तो मुझे केवल रोटी की चिन्ता थी और अब देश भर की झंझट और सम्हाल का बोझ मेरे सिर पर है और चूकने की दशा में असह दुख। संसार के जंजाल में जो फँसा सो मर मिटा, यहाँ का सुख भी निपट दुख रूप है, अब मेरी आँखों के सामने साफ़ दरसता है कि संतोष के बराबर दूसरा धन संसार में नहीं है—सादी

५६—बुद्धि

१८७ बुद्धिमानी असाधारन या विशेष समझदारी का नाम है जिसका बाप "तजरिबा" या जानकारी और मा "याद" है। यह ऐसा धन है जो खर्च करने से घटने के बदले बढ़ता है—मेन०

१८८—बुद्धि तीन प्रकार की होती है (१) तेलिया बुद्धि कि एक बूँद तेल की थाल भर पानी में डाल देने से तमाम फैल जाती है यह निर्मल बुद्धि है जो एक वचन से उस के सर्व अंग का चित्त में विस्तार करके समझ लेती है; (२) मोतिया बुद्धि कि मोती में जितना बड़ा छेद करो उतना ही बना रहता है बढ़ता घटता नहीं यह मध्यम बुद्धि है कि जितनी सीख दी जाय उस को ग्रहन करती है विशेष उपज की शक्ति नहीं रखती: (३) नमदा बुद्धि कि नमदे में सुआ से छेद करो तो तुरत बंद हो जाता है यह जड़ बुद्धि है जो वचन को तुरत भुला देती है उस का असर ठहराऊ नहीं होता—रा० स्वा०

१८९—बुद्धिमान वह है जो अलभ वस्तु के पीछे नहीं पचता, गई वस्तु के लिये सोच नहीं करता, विपत के बोझ से दब नहीं जाता—महा०

---

१९० जैसे मधु-मक्खी विना फूल के रंग रूप या सुगंधि को बिगाड़े उस का रस चूस कर उड़ जाती है ऐसे ही बुद्धिमान सार वस्तु अर्थात् सत्य को ग्रहन करके शेष का त्याग करता है ॥

१९१—जो कोई परस्त्री को माता और परधन को मिट्टी और सब जीवों को अपने समान जाने वही संसार में पंडित और धर्मात्मा है—हित०

सत्य वचन आधीनता, परत्रिय मात समान ।
याहू पै हरि ना मिलैं, तो तुलसी झूठ जवान ॥

१९२—आदमी बहुत जीने से जानकार नहीं बनता बरन बहुत देखने से—तुरकी

---

१९३ , जो आदमी बुद्धि की खोज मैं है उसे वह उस के द्वारे ही पर बैठी मिल जाती है दौड़ धूप नहीँ करनी पड़ती। बुद्धि आप ऐसौं को खोजती फिरती है जो उस के योग्य ह झाँकी देने को सड़क पर खड़ी रहती है और हर एक विचार मैं उन से भैंटती है—सुलैमान

१९४—किसी ने एक बुद्धिमान से पूछा कि बुद्धि बड़ी कि चतुरता जवाब दिया कि जिस बुद्धि मैं भलाई नहीँ उस का नाम बुद्धि नहीँ और जिस चतुरता में बुद्धि नहीँ उस का नाम चतुरता नहीँ—पारसी

१९५—किसी ने दूसरे बुद्धिमान से पूछा कि आप ने पहले पहल बुद्धि किस से सीखी । जवाब दिया कि अंधौं से जो बिना रास्ते को टटोले कभी आगे नहीँ बढ़ते ॥

१९६—बुद्धिमान का क्या धर्म है ? कुल मालिक की आज्ञा-पालन और अंतर से धन्यवाद, राजा के साथ राज-भक्ति और अच्छी सलाह, अपने साथ गुन से बनाव और अवगुन से बराव, मित्रौं के साथ उदारता और सचाई और सर्व साधारन के साथ सभ्यता और रक्षा ॥

१९७—कथा है कि विश्नु ने राजा बलि से पूछा कि तुम पाँच बुद्धिमानौं के संग नर्क मैं जाना पसंद करोगे या

पाँच मूर्खों के साथ स्वर्ग में। वलि बोले—स्वामी मैं बुद्धि-मानों के संग नर्क में जाना पसंद करूँगा क्योंकि जहाँ बुद्धि-मान रहैं वही स्वर्ग है और मूर्खता स्वर्ग को नर्क बना देती है॥

५७-ज्ञान

१६८—संतों ने ज्ञान दो प्रकार के कहे हैं—(१) सूप-वत ज्ञान जो सूप की तरह वस्तु को पछोर कर कन या सार को पेट में धर लेता है और भूसी इत्यादि को निकाल देता है, यह सज्जनों का सुभाव है। (२) चलनी-वत ज्ञान जो चलनी की नाईं सार वस्तु को गिरा कर विकार को पेट में धर लेता है, यह दुर्जनों का सुभाव है—च० दा०

५८-विचार

१६६—कहा है जल्दी काम शैतान का। हल्वली में कोई काम नहीं बनता है और धीरज और विचार के साथ चलने में कठिन से कठिन काम सहज हो जाता है जैसे नदियों का पानी हौले हौले चल कर पहाड़ों को तोड़ देता है॥

२००—जो विचारवान है वह थोड़े में भी सुखी रहता है। बुद्धिमान के तीन लच्छन हैं—(१) जो सीख दूसरों को देना उस पर आप चलना—(२) कभी ऐसा काम न करना जो यथार्थ नहीं है—(३) अपने पासबरतियों की कसरों पर दोष-दृष्टि न लाना॥

२०१—अपने आश्रित के साथ बरताव करने में याद रक्खो कि तुम भी किसी के नौकर हो सकते हो। किसी हाथीवान को मैं ने नील नदी के किनारे एक कड़ी पढ़ते सुना जिस का अर्थ यह है कि यदि तू उस चींटी के कष्ट को जो तेरे पैर तले कुचल जाती है न जानता हो तो समझ ले कि वह वैसा ही होता है जैसा कि तुझे हाथी के पाँव तले कुचल जाने से होगा—सादी

२०२—दो बातें गाँठ में बाँध रक्खो तो कभी धोखा न खावगे (१) कोई काम विना सोचे विचारे न करो, (२) जब कोई तुम्हारी भूल दिखला दे तो अपनी राय के बदलने में लाज न करो—मा० आ०

२०३—कोई काम बिना सलाह के मत करो और जब कर चुके तो पछताव मत—इबरानी

२०४—दो बातें याद रक्खी जायँ तो बहुत से झगड़े रगड़े बच जायँ, एक तो यह समझ लेना कि झगड़ा केवल बात ही बात का है या उस में कुछ तत्व भी है दूसरे जिस चीज़ पर झगड़ा हैं वह ऐसी है जिस पर झगड़ा चलाया जाय ?

२०५—जब अकेले हो अपने अवगुनों को सोचो और जब दुकेले हो दूसरों के अवगुनों को भूल जाव—जापान

५९-धोखा

२०६—जो एक बार धोखा दे उस को लाज है जो दुहराय के धोखा दे तो तुम को लाज है—नीति०

६०-कपट

२०७—एक कवि ने कपटी की उपमा भेड़ के भेष में भेड़िये की दी है, उस से सदा दूर भागो। कबीर साहिब ने कहा है—

चित कपटी सब से मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुर्जन इक आरसी, आगे पीछे और॥
हेत प्रीत से जो मिलै, ताको मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय॥

२०८—जो बाहर से साफ़ सुथरा और भीतर से मैला है वह नर्क के द्वारे की कुंजी हाथ में लिए हुए है—सुंदर

६१-भूल चूक

२०९—भूल चूक मनुष्य के शरीर का धर्म है, सिवाय भगवंत के कोई अचूक नहीं कहा जासकता। चूक ही से आदमी सीखता है, जो कभी नहीं चूकता वह कुछ नहीं सीखता। सच पूछो तो ऊँचे खन पर चढ़ने की यह सीढ़ी है। इसलिये आदमी को चाहिये कि भूल चूक से या और किसी कारन जो हीनता हो उस से निरास कभी न हो बरन

दूने उद्वेग से उस काम में लगे। हाँ बुद्धिमान उसी भूल में दुबारा न पड़ेगा और आगे को चौकस हो जायगा—आवर०

२१०—आदमी जितना अपना आप बिगाड़ करता है उतना दूसरे नहीं कर सकते। जो कुछ हम आप सीखते हैं उसका असर दूसरों की सीख से बढ़ कर है और पत्थर की लीक हो जाता है—आवर०

६२-तजरिबा, जानकारी

२११—तज़रिबा या जानकारी एक भारी पाठशाला है जिस में हर एक थोड़ा बहुत खो कर सीखता है पर मूर्ख और किसी पाठशाला में सीखता ही नहीं। हमारी अर्थ-सिद्धि और सुख हमारे ही आधीन है दूसरों के आधीन नहीं है—आवर०

२१२—तज़रिबा या जानकारी वह पदार्थ है जो संसार की वस्तुओं की झूठी तड़क भड़क को (जिस पर युवा और कच्ची अवस्था के लोग रीझ जाते हैं) छाँट कर उनकी असली हालत को दरसाता है और हर चीज़ की हानि लाभ का लखाव कराता है॥

६३-उपदेश, सलाह

२१३—उपदेश या अच्छी सलाह जहाँ से मिले आदर के

साथ स्वीकार करो—देखो, मोती सा अनमोल पदार्थ सीप जैसी तुच्छ वस्तु से निकलता है ॥

२१४—जो अच्छी सलाह नहीं सुनता वह धिक्कार सुनेगा—सादी

६४-मूर्खता

२१५—जो मूर्ख अपनी मूर्खता को जानता है वह धीरे धीरे सीख सकता है पर जो मूर्ख अपने को बुद्धिमान समझता है उस का रोग असाध है—अफ़०

२१६—जैसे एक सूखा पेड़ अपनी रगड़ से सारे जंगल को जला दे सकता है वैसे ही ऊँचे कुल का एक नीच अपने पुराने कुनवे का नाश कर देता है। इसी तरह यदि किसी जाति में एक उत्तम पुरुष हो तो उस के गुनों से जाति भर की कीर्ति होती है जैसा कि एक चंदन का पेड़ सारे जंगल को सुगंधित कर देता है—दादू०

२१७—मूर्खता के यह नौ चिन्ह हैं—(१) किसी के भोज में बिना न्योते के जाना,(२) मिहमान होकर घर के मालिक पर हुकम चलाना (३) जहाँ दो आदमी एकांत में बात करते हों वहाँ धँसना (४) बड़ों और हाकिममों की हँसी उड़ाना (५) अपनी हैसियत से ज़ियादा ऊँची जगह पर जाबैठना (६)बहुत बोलना और ऐसी बातें करना जिसमें सुननेवाले को रस न आवे, (७) उधार लेना और उस के चुकाने का जतन

न करना, (८) अपने से छोटी जाति में ब्याह करना, (९) बिना सख़्त ज़रूरत के दिखावे के लिये ब्याह में अपनी हैसियत से ज़ियादे ख़र्च करना ॥

६५—कपूत

२१८—कपूत छाँगुर की नाईं है जिसे काट डालो तो पीड़ा हो और न काटो तो कुरूपता बनी रहे—बुज़ुर०

६६—मौत

२१९—देर सवेर मरना हर आदमी के साथ वैसाही लगा है जैसा जनमना, वरन मरने से यह लाभ होता है कि सिवाय संसार की झंझट और दुख से छुटकारा होने के लोग मरने-वाले की ईर्षा छोड़कर उस को भला कहने लगते हैं ॥

---

२२० मौत ऐसी कष्ट दायक नहीं है जैसा उस का डर, सो यह कष्ट और डर उन को अधिक व्यापता है जिन का मन और प्रान संसार में जकड़े हुए हैं और जिन की करनी खोटी है। भक्तजन और धर्मिष्ठ जो भगवत शरन को कभी नहीं बिसारते और जो संसार को असार जानते हैं वह तो मौत की अगवानी करने को सदा तैयार रहते हैं ॥

---

२२१ कथा है कि एक भोला भक्त जब मरने लगा तो उसने मालिक से प्रार्थना की कि अचरज जान पड़ता है कि दोस्त की जान दोस्त लेवे, मालिक ने फ़रमाया तअज्जुब मालूम होता है कि दोस्त दोस्त के दीदार और दर्शन से

भागे, यह सुन कर वह खुशी से मरने को तैयार हो गया ॥ छाँ० ब० म०

२२२—कारज का कारन में पलट जाना इसी को नष्ट होना कहते हैं ॥ सांख्य

६७-रोना पीटना, बिलाप करना

२२३—मरे या बिछड़े प्रानी या पदार्थ के लिये जो रोता है वह धीरज के बदले दूने सोग को प्राप्त होता है—महा०

२२४—किसी के मरने पर रोना पीटना हर मत में बुरा समझा गया है। गरुड़ पुरान में तो चिता बुझाने के पीछे साधारन रोने का भी निषेध किया है और लिखा है कि सब आँसू और नाक का पानी लिंग शरीर को चाटना पड़ता है।

मुसलमानों में केवल चिल्ला कर रोना और सिर और छाती कूटना बर्जित है। कथा है कि जब हज़रत मुहम्मद का पंद्रह महीने का बच्चा मर गया और हज़रत उसकी लाश पर झुक कर रोने लगे तो उन के एक सेवक अब्दुर्रहमान ने पूछा कि हज़-रत ने हम लोगों को तो इस तरह रोने से मना किया है फिर आप क्यों बिलाप करते हैं। जवाब मिला कि हम ने चिल्लाने और चीखने और सिर कूटने और कपड़ा फाड़ने की मनाही की है जो कि शैतानी खेल हैं पर आँसू तो करुना का चिन्ह है और दिल के घाव पर खुश्बूदार महरम का काम करता है।

पारसियों में रोने पीटने की बड़ी निन्दा की है और कहा है कि आँसू की एक काली नदी नर्क के समान भयंकर वन

जाती है जिसे उन जीवों को जिन के मरने पर रुदन हुआ पार करना महा कठिन होता है ॥

६८-पुनर्जन्म

२२५—पुनर्जन्म को हिन्दू और जैन मतों में माना है और इस के बहुत से प्रत्यक्ष प्रमान देखने में आते हैं जिन में छोटे भोले बालकों ने अपने पिछले जन्म के हाल बयान किये हैं जो जाँच से ठीक निकले मुसलमान और ईसाई मतों में पुनर्जन्म को नहीं मानते तौभी दोनों मतों में विरले अंतर-अभ्यासियों ने इस को ठीक माना है। जगत-प्रसिद्ध महात्मा और विद्वान मौलाना रूम ने फ़र्माया है—"हफ़्त दो हश्ताद क़ालिब दीदः अम, हम चु सब्ज़ः बारहा रोईदः अम" ॥

[सात दो यानी चौदह और सत्तर =८४ शरीर (जोनि) मैं भुगत चुका हूं और घास की तरह कितनी ही बार उग चुका हूं हिन्दू शास्त्र में चौरासी लक्ष जोनि कहा है]

२२६—फ़ीसाग़ोरस (Pithagorus) यूनान का प्रसिद्ध विद्वान जो संसारी योग्यता के साथ अभ्यासी भी था उसका भी पुनर्जन्म में दृढ़ विश्वास था। उसने कहा है कि मैं पहले जन्म में फ़ौज का अफ़सर था और लड़ाई में मारा गया, और उस के पता देने पर एक कंदरा में जहाँ लड़ाई हुई थी उस के हथियार पड़े हुए मिले। इसी तरह अपने बहुत से चेलों के पिछले जन्मों का हाल बताया और लोगों को प्रत्यक्ष प्रमान से निश्चय करा दिया ॥

६९—आगे की फ़िकर

२२७—आदमी को चाहिये कि विपत आ पड़े तो इस विचार मैं समय न गँवावे कि विपत का कारन क्या है और उस के रोकने की क्या तदबीर थी। उस का अवसर तो बीत गया अब विपत से बचने का जो उपाय हो उस को सोचे और जो जुगत सूझे उस को जी लगा कर करे—हित०

२२८—बुराई से बचने की तदबीर पहले से करनी चाहिये "फिर पछताये होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"

७०-बर्तमान समय अनमोल

२२९—किसी ने एक महात्मा से उपदेश के लिये प्रार्थना की वह बोले कि मन को पीछे और आगे के जंजाल मैं न डालो अर्थात् जो हो चुका या जो होने वाला है उस का सोच न करो बरन जो समय हाथ मैं है उस को अच्छे काम मे लाओ—पा० भा०

२३०—हज़ार बरस जो बीत गया है और हज़ार बरस जो आने वाला है सब से बढ़ कर वह घड़ी है जो तुम्हारे हाथ मैं है, इस मैं कमाई कर लो—शिबली

७१—वाच्य ज्ञान

२३१—जो औरौं को उपदेश करना फिरता है और आप उस पर अमल नहीं करता उस का उपदेश ऐसा है जैसे बिना

सुगंध का फूल। दूसरोँ का मन मारना सहज है पर अपना मन मारना कठिन काम है—ध० प०

२३२—पानी मिलै न आष को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निःचल नहीँ, और बँधावत धीर॥
—कबीर

२३३—जो आदमी विना आप पूरा हुए दूसरोँ को उपदेश करता है वह बहुतोँ का गला काटता है पर जो आप पूरा होकर दूसरोँ को शिक्षा नहीँ देता उस के विषय मैँ भी यह कहा जा सकता है कि उस ने बहुतोँ का वलि दिया—जापान

२३४—जिस ने अपने को समझ लिया वह दूसरोँ को समझाने नहीँ जायगा—ध० प०

७२—कटु बचन

२३५—किसी के चित्त को मनसा वाचा कर्मना मत दुखाओ। कहा है कि—

अंतर से जो दुखित ह्वै, दुखिया मारै हाँक।
सहस बरस के विभव को, छिन मैँ करदे खाक॥

२३६—कटु बचन विष की बुझाई बरछी के समान है जिस की चोखी नोक कलेजे मैँ छेद करदेती है—

देखो काल के अजुगत को, क्या खेल तमासे करता है।
जीभ तो मुँह मैँ चलती है, और माथा कट के गिरता है॥

२३७—तीर का घाव पुर जाता है, कुल्हाड़ी का काटा जंगल फिर उग आता है परंतु विष भरे वचन का घाव नहीं पुरता। शरीर में घुसा हुआ तीर कैसा ही क्यों न हो निकाला जा सकता है लेकिन दुर्वचन का चोखा तीर कलेजा छेद डालता है और किसी जतन से नहीं निकलता—महा०

२३८—कुबुध कमानी चढ़ रही, कुटिल वचन का तीर।
भर भर मारै कान में, सालै सकल सरीर॥
कहावत है 'जीभ चले मूंड कटे'-कबीर

२३९—कटु वचन का जतन सुननेवाले के लिये चुप लगा जाना है, कबीर साहिब ने कहा है—

मूरख को मुख बिम्ब है, निकसत वचन भुवंग।
ताको औषध मौन है, विष नहिं लागत अंग॥

२४०—कथा है कि हज़रत मुहम्मद और हज़रत अली साथ चले जाते थे रास्ते में एक आदमी मिला जो किसी कल्पित दोष के लिये हज़रत अली को गाली देने लगा। कुछ देर तक तो हज़रत अली ने उस के दुर्वचन को सहा पर अंत को थक कर आप भी दुर्वचन कहने लगे। यह दशा देख कर मुहम्मद साहिब उन्हें छोड़कर आगे बढ़े कि दोनों आपस में निबट लें। हज़रत अली झपट कर उन के साथ हो लिये और शिकायत की कि आप मुझे उस दुष्ट के पंजे में अकेला छोड़कर क्यों चल दिये। मुहम्मद साहिब बोले कि सुनो अली

जब वह दुष्ट तुम को कड़ी कड़ी गालियाँ दे रहा था और तुम चुप थे मैं ने देखा कि दस गंधर्व. तुम्हारी रक्षा कर रहे थे और उस का जवाब देते थे पर जब तुम ने भी गाली देनी शुरू की तो सब गंधर्व एक एक करके हट गये और फिर मैं भी हट आया ॥

७३—निन्दा, अवगुन दृष्टि

२४१—अवगुन दृष्टि छोड़ दो क्योंकि इससे उस दोष की छाया पड़ने से वह अंतर मैं बस जाता है—

मत देख पराये औगुन । क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन ॥

—रा० स्वा०

२४२—अवगुन दृष्टि वाले को दूसरों के दोष चाहे वह राई से भी छोटे हों दूर से दीख पड़ते हैं पर अपने दोष चाहे वह बेल से भी बड़े हों पास से नहीं सूझते—महा०

२४३—किसी ने लुक़मान हकीम से पूछा कि आप ने सभ्यता किस से सीखी जवाब दिया कि असभ्य मनुष्यों से—पूछा कि कैसे, बोले कि जो बात इन की मेरे जी मैं खटकी उस का मैं ने त्याग किया—सादी

२४४-संसार मैं सब घोर नींद मैं सो रहे हैं और अचेत हो कर जुदा जुदा सुपने देख रहे हैं इसलिये किसी की निन्दा मत करो—रामा० वा०

२४५—निन्दकों के संग से उपकार होता है क्योंकि उनकी दोष दृष्टि होती है और तुम्हारे अवगुनों को प्रकाशित करके सुधार का अवसर देते हैं—

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय॥

—कबीर

२४६—जो दूसरों के अवगुन बखानता है वह अपना अवगुन प्रगट करता है—बुद्ध

२४७—मालिक देखता है और चुप रहता है—परोसी देखता नहीं पर शोर मचाता है—सादी

२४८—निन्दक और ज़हरीले साँप दोनों के दो दो जीभ होती हैं—तामिल

२४९—संसार में न किसी की सदा स्तुति होती है न निन्दा—ध० प०

२५०—निन्दा जीभ ही से नहीं होती वरन सैन से भी। किसी के अंग भंग या शरीर की ऐसी कसर की जो ईश्वर की दात है या किसी कारन से पैदा हुई है ज़बान से या इशारे म निन्दा करना या उस पर हँसी उड़ाना पाप की बात है, इस से उस आदमी के जी पर बड़ी चोट लगती है और मालिक अप्रसन्न होता है। इसी तरह दूसरे की किसी कसर का हँसी की राह से चिन्तवन करना भी अपने लिये हानि-कारक है॥

२५१—सैन और संकेत से लिम लगाने वाले वैन से अर्थात् खुल्लम खुल्ला निन्दा करने वालों से बढ़ कर घातक होते हैं और वह दंड के परे रहते हैं क्योंकि कोई उन को पकड़ नहीं सकता, सो दोनों प्रकार के दुष्ट अपनी घातों को जभी छोड़ेंगे जब कि लोग उन की बातों और इशारों की तरफ़ से अपने कान और आँख बंद कर लेंगे।"

२५२—ऊपरी बातों को देख कर किसी की बाबत भली बुरी राय न ठहरा लो क्योंकि पानी के ऊपर तो तिनका ही तिरता दीख पड़ेगा मोती जो तली में छिपा रहता है दृष्टि में नहीं आता अन्तरी गुन को गुन-ग्राही ही पहचानते हैं।

२५३—आदमी को चाहिये कि अपना काम देखे, दूसरे की खोद बिनोद न करे—डिमास०

२५४—कान और आँख के बीच में बहुत कम दूरी है पर सुनने और देखने में बहुत बड़ा फ़र्क है।

२५५—निन्दा प्रतिष्ठित होने का कर है।

२५६—दूसरों के काम में दोष निकालना सहज पर उसके सुधार की ठीक जुगत बताना कठिन है—डिमास०

२५७—बुद्धिमान डायोजिनीज़ से किसी ने पूछा कि सब से अधिक भयानक जानवर कौन है जवाब दिया कि जंगली जानवरों में झूठा निन्दक (तुहमती) और पालतू जानवरों में खुशामदी—डायो०

७४—ख़ुशामद

२५८—एक बुद्धिमान की कहन है कि ख़ुशामदी ऐसा जानवर है जो "मुसकराता हुआ काटता है" उसे भारी दग़ाबाज़ जानो क्योंकि वह तुम्हारी कसरों को पुष्ट करेगा, बुराई के करने में सहारा देगा और तुम्हारे दोष तुम्हें जताने के बदले तुम्हारी मूर्खता और अवगुनों पर ऐसा लुक फेर देगा कि तुम भले बुरे का विवेक कदापि न कर सकोगे—बेकन

२५९—कथा है कि फ़रासीस का शाहंशाह चौधवाँ लुई जब कभी गिरजा को जाता था तो भीड़ के मारे गिरजाघर उफन उठता था। एक बार जब वह गिरजाघर गया तो सिवाय पादरी के किसी को न पाया। सबब पूछा तो पादरी ने जवाब दिया कि आप को यह दिखाने को कि गिरजा में कितने "भक्त" ख़ुदा की बंदगी को और कितने "ख़ुशामदी" आप के ख़ुश करने को आते हैं मैं ने मशहूर कर दिया था कि बादशाह आज न आवेंगे जिस से यहाँ कोई नहीं फटका॥

७५—सुख

२६०—संसार के सुख छिन-भंगी हैं। कोई सुखी नहीं कहा जा सकता जो सुखी न मरे—सोलन

२६१—संसार में निर्मल सुख किसी को नहीं है कुछ न कुछ किरकिराहट मिली ही रहती है, केवल वही जिस को अपने ईमान (कान्शेन्स) और कर्त्ता के साथ मेल है सुखी कहा

जा सकता है। ऐसा आदमी जिस की इच्छाएँ विचार-संयुक्त हैं और जिस का जीवन निर्दोष है उसको अपना भाग कोसते हुए कभी न सुना होगा ॥

२६२—बढ़ का सुख क्या है ? दूसरों को सुख देना—

मनसा वाचा कर्मना, सब को सुख पहुँचाय ।
अपने मतलब कारने, दुक्ख न दे तू काय ॥

—रा० स्वा०

२६३—सच्चा सुख किस में है—दीन आधीन रहना, जो कुछ मालिक ने दिया है उस में राज़ी रहना, जो होनी है उसके लिये पहले से तैयार रहना ॥

२६४—प्राचीन कुल, अधिक धन, ऊँचा पद इन सब में दुख सुख दोनों लगे हैं। संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जिस में निर्मल सुख बिना दुख के मेल के हो। सच्चा सुखी वही है जो हर अवस्था में चाहे जैसी हो संतुष्ट रहे—वि० पु०

२६५—तन्दुरुस्ती मालिक की भारी दात है, संतोष अचुक धन, प्रतीत पूरा मित्र, शान्ति पूरा सुख—ध० प०

२६६—हार से दिलों में हटाव पैदा होता है क्योंकि जिस की हार हुई है वह असंतुष्ट बना रहता है। सुखी वही है जो हार जीत की परवाह नहीं करता—ध० प०

७६-मन

२६७—मन की तरंगों के रोकने में सुख है बिना इन के रोके आदमी ऐसा बह जाता है जैसे हवा के झोंके से बिना डाँड़े की नाव—पा० भा०

२६८—युवा अवस्था में मन निठल्ला (ख़ाली) नहीं रह सकता। यदि तुम उस में अच्छे गुन न बसाओगे तो अवगुन अवश्य समायेंगे॥

२६९—बोली मन का चित्र है, लेखनी (क़लम) मन की जीभ—बेकन

२७०—अगर तुम्हें कोई कष्ट है तो याद रक्खो कि वह कष्ट की बात कष्ट-दायक नहीं है वरन उसके विषय में तुम्हारी समझ, जिसे तुम चाहो तो एक छिन में बिसार सकते हो—मा० आ०

२७१—शरीर जल से पवित्र होता है, मन सत्य से, आत्मा भगवत सुमिरन से, मूर्खता ज्ञान से—मनु०

२७२—मानसी कष्ट शारीरिक कष्ट से विशेष दुखदाई होता है। एक राजा इस बात को नहीं मानता था सो उसके बुद्धिमान मंत्री ने बकरी के दो बच्चे मंगा कर एक की तो टाँग तोड़ दी और उसके आगे खाना धर कर एक कोठे में बंद कर दिया और दूसरे को भला चंगा एक बाघ के साथ उस से कुछ दूर पर दूसरे स्थान में बाँध कर बंद कर दिया। सवेरे राजा को दिखाने को ले गया तो टूटी टाँग वाला

मेमना तो सब खाना चख गया था परन्तु बाघ के साथ का मेमना डर से मरा पड़ा था—लुक०

२७३—इच्छा को चाहे रानी बना लो चाहे बाँदी-उस के कहे में चलो तो वह दुख के कुंड में जा डुबावेगी और जो अपने बस में रक्खो तो सर्व सुख प्राप्त होंगे—हित०

२७४—जिस ने अपनी कामनाओं का दमन करके मन को जीत लिया और शान्ति पाई तो चाहे वह राजा हो या रंक उसे संसार में सुख ही सुख है-हित०

२७५—तुम्हारे घट में तुम्हारा मन भयंकर शत्रु है जिसकी घातों से बचने के लिये सदा चौकस रहो और याद रक्खो कि और बैरी के साथ भलाई और नम्रता करने से सुख उपजता है पर मन बैरी के साथ नम्रता करने से दुख उपजता है-कबीर

२७६ - जिसका मन मुरीद हुआ वह जगत-गुरू है : जैसे कच्ची छत में पानी भरता है वैसे ही अविवेकी मन में कामनाएँ धँसती हैं-ध० प०

२७७—घट के दर्पन को माँज कर अपना रूप देखो तो इतने अवगुन दरसैंगे कि दूसरों के अवगुन बिसर जायँगे—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझ सा बुरा न होय॥
दोष पराये देखि कर, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जिन का आदि न अंत॥

—कबीर

७७—सुकर्म, भलाई, पुन्य

२७८—सुख को भलाई या सुकर्म का फल न समझो, सुकर्म का फल आप सुकर्म है—महा०

२७९—जो दूसरों का भला करता है उस का भला मालिक आप करता है—ध० प०

२८०—भलाई ऊपर को चढ़ती है इसलिये उसकी चाल धीमी होती है—बुराई नीचे को उतरती है इसलिये उस की चाल तेज़ होती है और थोड़े ही काल में अपना अमल पसारा कर लेती है—सुंदर०

२८१—हर एक के साथ भलाई करो किसी के साथ बुराई न करो। अगर कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तो उसका वह ज़िम्मेदार है तुम अपना मन न बिगाड़ो और न अपना कर्तव्य छोड़ो—मा० आ०

२८२—जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल॥
—कबीर

२८३—भला काम करने का सुभाव ऐसा धन है जिसे न शत्रु छीन सकता और न चोर चुरा सकता—मा० आ०

२८४—जिस बात से समाज को सुख पहुँचे उससे अगर तुम्हें कुछ दुख भी पहुँचे तो रुष्ट न हो—मा० आ०

२८५—जिस किसी की भले काम करने के लिये निन्दा होती है वह बड़भागी है ; जो भलाई के बदले शुकरगुज़ारी या किसी फल की आस करता है वह अभागी है और अपने सुकर्म की लगत पर कड़ा ब्याज चाहता है। जिस का तुम ने भला किया है उस को सुखी देखने की ख़ुशी ही तुम्हारे लिये पूरा इनाम होना चाहिये—मा० आ०

२८६—हर एक सुकर्म दान है—प्यासे को पानी देना, रास्ते से कंकड़ काँटा हटा देना, लोगों को अच्छा काम करने के लिये समझाना, भटके को रास्ता दिखा देना, हर आदमी से हँस कर बोलना, यह सब दान के तुल्य हैं। जो भलाई आदमी इस लोक में करता है वही उस की परलोक की पूँजी है। मरने पर संसारी पूछेंगे कि क्या माल छोड़ गया पर देवता पूछेंगे कि क्या धर्म की पूँजी तूने परलोक को भेजी—महा०

२८७—फ़ारूँ बादशाह को हज़रत मूसा ने उपदेश किया कि भलाई वैसी ही गुप्त रीत से कर जैसे मालिक ने तेरे साथ की है। उदारता वही है जिस में निहोरे का मेल न हो तभी उस का फल मिलता है। सच्चे उपकार के पेड़ की डालियाँ आकाश के परे पहुँचती हैं—सादी

२८८—भला काम जिसे आज कर सकते हो कल्ह पर न छोड़ो क्योंकि मौत जिस के पास पहुँचती है यह नहीं देखती कि वह अपना काम पूरा कर चुका है या नहीं। मौत को किसी से न राग है न द्वेष न मित्रता न शत्रुता—अ० पु०

२८६—भलाई न किसी ख़ास देश के हिस्से में आई है और न रूप रंग का प्रभाव है, यह अभ्यास से प्राप्त होती है। इस लिये दूसरों के साथ वैसा ही बरताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वह तुम्हारे साथ करे ॥

७८-कुकर्म-बुराई-पाप

२६०—दूसरों का भला करने का नाम पुन्य और बुरा करने का नाम पाप है—व्यास

२६१—किसी महात्मा का वचन हैं कि दिन भर बुरी चिन्तवन और कुकर्मों से बचना रात भर के भजन बंदगी से बढ़ कर है—डिमास०

२६२—जब किसी को बुराई या कुकर्म करते देखो तो अपने मन में क्रोध न आने दो ऐसा विचार कर कि यह तो संसार की नित्त की करतूत है इसमें नई बात क्या है; दुष्ट जन का विच्छू के समान डंक सुभाव ही से चलता रहता है वह किसी को वैर बस नहीं मारता। जो बुराई दूसरे की तुम्हारे चित्त में धँस न जाय और अपना बुरा असर तुम पर पैदा न कर सके उस से तुम्हारी हानि नहीं हो सकती। यदि इन सब समझौतियों पर भी तुम्हारा क्रोध शान्त न हो तो अपने मन से कहो कि दुष्ट जन के विष को उस के शरीर से दूर करने का जतन करे—मा० आ०

२६३—पाप कर्म जो करे बुरा है परन्तु विद्वान में बहुत ही बुरा है। दुराचारी मूर्ख असंजमी विद्वान से अच्छा है

क्योंकि वह तो अंधा होने के कारन मार्ग से चिचल गया और यह दोनों आँख होते कुएं में गिरा—सादी

२६४—जो तुम से कोई कुकर्म बन पड़ा है तो उस का पछतावा व्यर्थ है जब तक कि प्रन न कर लो कि फिर ऐसा काम न करोगे ॥

७९—गुन, अवगुन

२६५—गुन उस उत्तम सुगंध के समान है जो कुचलने या जलाने से महकती है क्योंकि दुख में गुन का और सुख में अवगुन का लखाव होता है। अवगुन नाव की पेंदी के छेद के समान है जो छोटा हो या बड़ा एक दिन उसे डुबा देगा—कालिदास

८०—वैर

२६६—अगर तुम से कोई वैर रखता है तो केवल इतना देखो कि तुम्हारी किसी काररवाई से तो वह नहीं चिढ़ गया है अगर ऐसा नहीं है तो अपने मन को दुखी न करो और उस पर दया भाव बनाये रहो—मा० आ०

२६७—अगर कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तो सोचो कि लाभ और हानि को वह क्या समझता है यदि उसकी समझ तुम से मिलती हो तो वह छिमा के योग्य है और जो न मिलती हो तो उसकी मूर्खता पर अफ़सोस करो—मा० आ०

२६८—निपट मूर्खों और दुर्जनों का बैर जो पत्थर की लीक होता है महा भयानक है जिस की वासना मरने पर भी जीव के साथ लगी रहती है और बड़ा कष्ट भोगाती है। इस के दृष्टाँत में थियासोफ़ी की पुस्तक "दि।अदर साइड आव डेथ" में एक कथा दी है कि किसी भले आदमी ने एक कटार मोल ली थी जिस के हाथ में लेते ही मन में एक विचित्र प्रकार की खलबली और उद्वेग उत्पन्न होता था। यह आदमी समझदार और धीर था पर हैरान था कि इस का कारन क्या है। एक दिन कटार,को हाथ में लिये इसी सोच में बैठा और ज़ोर देकर अपने को जगह से हिलने से रोके हुए था कि उसे एक पठान का सूक्ष्म रूप दीख पड़ा जो क्रोध से उस को घूर रहा था कि आगे क्यों नहीं खिंचता और उस के शरीर में धँसना चाहता था पर उस के निर्दोष होने के कारन प्रवेश न कर सका। फिर उस को पठान की स्त्री दिखाई दी जो दूसरे मर्द से फँस गई थी और जिन दोनों को उस ने इसी कटार से मार कर स्त्री वर्ग से ऐसा बैर ठान लिया कि उसी शस्त्र से अपनी साली और एक दूसरी औरत का घात किया और फिर आप मारा गया। तब से वह इस कटार के साथ सूक्ष्म रूप से रहने लगा और जिस जिस अचेत मनुष्य के पल्ले वह शस्त्र पड़ा उन सब से कितनी ही स्त्रियों का वध कराया जिन में से दो का पूरा पूरा सुबूत मिल गया। यह सब हाल जानने पर उस भले आदमी ने उस कटार को तोड़ कर धरती में गाड़ दिया। इस कथा का अभिप्राय यह है कि निपट जड़ प्रानी बैर को कहाँ तक पालते हैं और उस से किस अधोगति को प्राप्त होते हैं॥

८१—ईर्षा, डाह, जलन

२९९—ईर्षा के रोगी को दूसरे की उन्नति देख कर पीड़ा पैदा होती है और उस का आहार दूसरे का अवगुन है ऐसे रोगी को सुस्ताने के लिये छुट्टी भी नहीं मिलती ॥

३००—ईर्षावान आदमी दूसरे के उसी गुन की सराहना करता है जिस में वह आप उस से बढ़ कर है परंतु ऐसे गुन जो उस में नहीं हैं उन की वह निन्दा करता है। सच पूछो तो ईर्षा का तात्पर्य यही है कि ईर्षावान जिस की ईर्षा करता है उसको अपने से बड़ा मानता है—वा० हा०

३०१—किसी बुद्धिमान का ईर्षा के विषय में अलंकार है कि वह चारो ओर से दूसरों की कीर्ति के प्रकाश मंडल से घिरी रहती है जिस के भीतर यह बिच्छू की तरह जो ज्वाला से घिर गया हो अपने को आप ही डंक मारती हुई मर मिटती है—लुक़०

३०२—ईर्षा के उपहास की एक कथा है कि एक ईर्षावान आदमी और एक लालची दोनों एक देवल में प्रार्थना कर रहे थे। देवता ने विनती को स्वीकार करके आज्ञा की कि जो चाहते हो वर माँगो परंतु जो एक को मिलेगा उस से दूना दूसरे को मिलेगा। इस पर लालची ने यह बिचार कर अपने ईर्षावान साथी को अगुवा किया कि जो सम्पत वह माँगेगा उस की दूनी मैं पाऊँगा पर ईर्षावान ने उस की कुढ़नसे धन सन्तान माँगने के बदले यह वर माँगा कि मेरी एक आँख

फूट जाय जिस से वह आप काना हो गया और लालची दोनों आँखों का अंधा—लुक०

८२—क्रोध द्रोह

३०३—क्रोध ऐसी आग है जो सुरत की धार को जला देती है और क्रोधी आदमी के शरीर में ज्वाला फूँक देती है। क्रोध कितने ही पापों और झगड़ों का मूल है और इस के उठने के बहुत पीछे तक मालिक का भजन बंदगी तो बन ही नहीं सकती—रा० स्वा०

३०४—क्रोध को तत्काल का पागलपना कहा है सो ठीक है, क्रोधी का जब मुँह खुलता है तो आँखें बंद हो जाती हैं। बहुतों ने क्रोध में ऐसी बातें कही और की हैं जिन्हें अगर वे फेर ले सकें तो अपना सरबस वार दें॥

३०५—जो भड़के हुए क्रोध के बहके रथ को रोक सके वही कुशल रथवान है हाथ से बाग पकड़े रहने में कोई चतुराई नहीं है—ध० प०

३०६—अगर तुम्हारे वैरी का तुम से विरोध रखने का कारन ठीक है तो तुम्हारा क्रोध करना अनुचित है, अगर वह भूल में पड़ा है तो उसकी मूर्खता पर तर्स खाओ। अफ़लातून ने कहा है कि जान बूझ कर कोई सच से विरोध नहीं करता इसी लिये अगर किसी झूठे या दुष्ट से उस के ऐब का कोई ज़रा भी इशारा करे तो वह लड़ने को तैयार होजाता

है क्योंकि वह अपने को ऐसा नहीं समझता। याद रक्खो कि अगर तुम में वह एक अवगुन नहीं है तो कितनेही दूसरे अवगुन भरे हैं जिन में तुम डर या लाज या अहंकार के कारन वह नहीं जाते फिर दूसरे के एक दोष पर क्यों अपने मन को मैला करते हो! यह भी याद रक्खो कि जिस कारन से क्रोध पैदा हुआ उस से उतनी हानि नहीं होती जितनी क्रोध से—मा० आ०

३०७—द्रोही से द्रोह करना द्रोह को दूना करता है—द्रोह का जतन प्यार है—ध० प०

३०८—द्रोह मोरचे या काई के समान है कि जिस पात्र में लगे उस को खा जाता है *—सुन्दर०

---

* क्रोध, द्रोह, आदि क्रोधी और द्रोही को कैसे खा जा सकते हैं इसका उसूल थिआसोफ़ी की आस्ट्रलप्लेन नामक पुस्तक में यों लिखा है कि जिस किसी में यह विकार बड़े बलवान होते हैं और भारी वेग से उठते हैं तो इसी वायुमंडल से अपना सजाती मसाला खींच कर अति भयानक सूक्ष्म रूप अलग धारन कर लेते हैं और जितने वेग से वह लहर उठी हो और जितना आहार इस रूप को उस विकार के बारंबार प्रगट होने से मिलता रहे उतने काल तक वह सूक्ष्म रूप जीता जागता अपने कर्ता के अंग संग रहता है और जब जब अवसर मिले उस अवगुन के करने में सहायता देकर अपनी पुष्टि को बढ़ाता है। ऐसे अवगुनवाला जिस किसी से विरोध रखता हो उस सूक्ष्म रूप को अग्निबान की तरह उस पर चला सकता है। यदि वह आदमी जिस पर यह शस्त्र चलाया गया दुर्जन है तो इस हवाई रूप को उस के भाँडे में ठिकाना मिलता है और उस में धँस कर उस की हानि करता है पर जो वह सज्जन है तो उस के निकट उस की गम नहीं होती वरन दूने वेग के साथ चलाने वाले

३०९—किसी को दूसरे पंथ वाले से द्रोह रखना अनुचित है; देखो पेड़ की सब डालियाँ एक ही ओर नहीं झुकतीं। शेख़ सादी का कथन है कि एक बार हज़रत इबराहीम किसी पथिक को बड़े आदर से अपने घर खिलाने को ले गये जब खाना शुरू हुआ इबराहीम ने मुसलमानी रीत के अनुसार "विस्मिल्लाह" कहा परंतु मिहमान चुप रहा। इस पर इबराहीम ने पूछा कि ग्रास उठाने के पहले तुम ने "विस्मिल्लाह" क्यों नहीं कहा। उसने जवाब दिया कि मैं अग्नि-पूजक हूँ यह सुनते ही इबराहीम ने क्रोध में भर कर उसको घर से निकाल दिया जिस पर आकाश-बानी हुई कि .खुदा ने उस आदमी का अनन्त काल से भूख प्यास दुख सुख में पालन किया, फिर क्या तुझ को शोभा देता है कि तू उसको एक दिन भी रोटी न दे केवल इस कारन कि वह मुझ को तेरी रीत से नहीं पूजता—सादी

३१०—हर आदमी अपने मत को सच्चा और अपने बच्चे को सुघड़ समझता है परंतु इस कारन दूसरे के मत या दूसरे के बच्चे को बुरा कहना उचित नहीं है—सादी

पर पलट आता है और उसका नाश कर देता है क्योंकि उस की असह भूख बिना आहार के संतुष्ट नहीं हो सकती और वह आहार उस के कर्त्ता में मौजूद है। इसी हवाई रूप को चलौआ या बान या मूठ मारना कहा है।

इसी उसूल पर कोसने और असीसने के असर को भी दिखलाया है कि जब कोई दुखी हो कर हृदय से सरापता है या सुखी हो कर अंतर से असीसता है तो वह मनोकामना उसकी अति सूक्ष्म रूप धर कर दुख या सुख पहुंचाने वाले का अपकार या उपकार करती है और जितनी सचोटी उस चाह की हो और जितने अधिक लोगों के हृदय में वह उठी हो उतना ही विशेष फल उस का प्रगट होता है॥

८३—पंचदूत

३११—पंचदूत अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मनुष्य के सब से घातक वैरी हैं जो मित्र का भेष धर कर उसे लुभाते और भरमाते हैं। उन से एक छिन के लिये अवश्य रस मिलता है पर इस का दंड कितनों को जीवन पर्यंत भोगना पड़ता है। जिस ने इन बलवान वैरियों को अपने वस में कर लिया वह भारी शूर और महा बड़भागी है, समझो कि उस ने संसार को वस में कर लिया—दूलन०

८४—क्षमा, बदला

३१२—बदला लेने से आदमी अपने शत्रु के बराबर हो जाता है पर छिमा करने से उस से बड़ा बनता है क्योंकि छिमा राजा का धर्म है—

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा विष्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥

३१३—जो कोई तुम्हें कोसे तुम उसे कदापि न कोसो। याद रक्खो कि क्रोधी के सराप से आसीस का फल मिलता है—रैदास

३१४—जो आदमी दूसरे के अपराध को छिमा नहीं करता वह अपने भवसागर पार करने की नाव में छेद करता है क्योंकि हर आदमी भूल और अपराधों से लदा और पतित-पावन की छिमा और दया का मुहताज है—रैदास

३१५—कथा है कि किसी बादशाह के एक भारी सूबेदार ने बलवा किया जो उसी का पाला पोसा और बनाया हुआ था। बादशाही फ़ौज ने चढ़ाई की और सूबेदार को परास्त करके पकड़ लाई। बादशाह के सब मंत्रियोँ का सम्मति हुआ कि ऐसे बलवान और भयंकर राजद्रोही (बाग़ी) का बध न करना राजनीत के विरुद्ध होगा परंतु जब वह बादशाह के सामने लाया गया और पछतावा और दीनता प्रगट की बादशाह ने तुरत गले लगा कर छिमा किया और अपने मंत्रियोँ से बोला कि तुम लोग मुझे मेरे उस अनूठे अधिकार और कर्त्तव्य से जो दैवी धर्म है विमुख रक्खा चाहते हो सो मैं नहीँ मानने का॥

८५—बिपत्ति

३१६—बिपत नीम से अधिक कड़वी होती है पर उस को यह समझ कर ग्रहन करना चाहिये कि रोग को हर कर मन को निर्मल कर देगी—जग०

३१७—बिपत आदमी को पक्का करती है और सच्चे और झूठे की पहचान कराती है—

तुलसी सम्पति के सखा, पड़त बिपति मैं चीन्ह।
सज्जन कंचन कसन को, बिपति कसौटी कीन्ह॥

—तुलसी

३१८—बिपत से कुश्ती लड़ना यद्यपि कठिन है पर इससे रग पट्ठे और मन पोढ़े होते हैँ और आदमी दाँव पेच सीख जाता है॥

३१९—जिस तरह बिना रुखानी से गढ़े मूरत नहीं बनती वैसे ही बिना बिपत से गढ़े आदमी नहीं बनता—ध० प०

३२०—सब ज्ञान का सार यह है—बिपत में शूर और बुराई से दूर रहो॥

३२१—बिपत में निरास न हो, मोती सी बूँदें काली ही घटा से बरसती हैं॥

३२२—बिपतों का तोड़ पर तोड़ बाढ़ की लहरों के समान आता है, धीर पुरुष को चाहिये कि उन को चट्टान की तरह सँभाले तो वह धीरे धीरे घटा जायँगी—मा० आ०

३२३—बिपत सचमुच उन को व्यापती है जो उस से डरते हैं; जो अपने मन को दृढ़ रक्खे और दुख सुख जो आवे उसे मालिक की दात समझकर प्रसन्न रहे उसके लिये बिपत कोई चीज़ नहीं—मा० आ०

३२४—हर बिपत में दो ही सूरतें हैं—या तो तुम उसे सहने की ताक़त रखते हो या नहीं, यदि वह तुम्हारी सहन शक्ति के बाहर नहीं है तो झींको मत, अपना बल लगाओ; और अगर तुम को उस के बोझ के उठाने की ताक़त नहीं है तौ भी चुप रहो, पहले तो वह तुम्हें दबा देगी और फिर आप बिखर जायगी। याद रक्खो कि किसी बिपत को असह मान लेनें से वह भारी होकर कुचल डालती है। उस के न व्यापने या हलकी हो जाने का उपाय यही है कि ईश्वर के न्याव और दया का चिन्तवन करके और संसार में अपने से बिशेष

दुखियोँ की दशा अपनी आँखोँ के सामने रखकर, उसका मुक़ाबला करने को कमर कस लो–मा० आ०

३२५—जिस ने कभी दुख नहीँ उठाया वह सब से भारी दुखिया है और जिस ने कभी पीर नहीँ सही वह बड़ा बेपीर है—मेन०

[तात्पर्य यह है कि बिना दुख के सुख की क़दर नहीं होती और सुख के अजीरन से दुख उपजता है इसी तरह जिस ने कभी दर्द नहीं सहा वह दर्दमंद के साथ हम-दर्दी नहीं कर सकता]

३२६—जैसे पथिक दूर से अपने रास्ते मेँ पहाड़ियाँ देख कर घबरा जाता है कि कैसे पार करेँगे लेकिन पास पहुँचने पर वह उतनी दुर्गम नहीँ ठहरतीँ वही हाल विपतोँ का है कि जो उन को दूर ही से देख कर घबरा जाता है उस को वह बहुत व्यापती हैँ लेकिन जब वह सिर पर आपड़ीँ तो धीरज काम मेँ लाने से थोड़े ही कष्ट मेँ भुगत जाती हैँ–वा० हा०

८६—आशा

३२७—आस क्या लोक क्या परलोक के संबंध मेँ जीवन-आधार है, बिना इसके दोनोँ की भारी हानि हो जाय बरन शरीर तक छूट जाय। इस पर यूनान देश की एक बड़ी उपयोगी कथा इस तरह लिखी है कि सृष्टि के आदि मेँ एक पुरुष इपिमिथ्यूस और एक स्त्री पंडोरा नामक रचे गये। ईश्वर ने इपिमिथ्यूस को एक बंद पेटी (सन्दूक़) दी और कहा कि इसे कभी न खोलना। वह उस को सदा अपने सिरहाने बड़े जतन से रखता था और स्त्री को भी ताकीद से समझा दिया था कि उस के खोलने का कभी इरादा न करे; तब तक

संसार में सुख ही सुख और चैन ही चैन था चिन्ता और दुख नाम को भी न थे। परन्तु एक दिन स्त्री के पेट में उस सन्दूक का गुप्त मर्म जानने की ऐसी खलबली पड़ी कि रात के समय जब उस का पति अचेत सो रहा था उस सन्दूक को खोल डाला। खोलते ही उस में से कलह क्लेश रोग सोग भय चिन्ता आदि अनगिनत उपाधियों के जूथ के जूथ सर्राटे के साथ निकल कर वायु-मंडल में फैल गये। इस खरमंड़ल से इपिमिथ्यूस की नींद खुली तो यह दशा देख घवरा कर उसने सन्दूक का ढकना बंद कर दिया जिस से "आस" जो सब से भारी वस्तु पेटी की तली में थी धरी रह गई और फैली हुई उपाधियों के कष्ट में उन दोनों की सम्हाल की। इस कथा का सारांश यह है कि भवसागर में असह चिन्ता और दुख की अवस्था में "आस" ही से जीव को सहारा मिलता है॥

३२८--आस को जीवन का लंगर कहा है। उस का सहारा छोड़ने से आदमी भवसागर में बह जाता है। पर बिना हाथ पाँव हिलाये केवल आस करने ही से काम नहीं सरता--लुक॰

८७--धन

३२९--आदमी छोटे छोटे लाभ से धनी बनता है क्योंकि यह सदा मिलते हैं, बड़े लाभ तो विरले आते हैं--बेकन

३३०--यूनान के बादशाह क्रीसस ने एक वार बुद्धिमान सोलन को अपना अनगिनत ख़ज़ाना दिखलाया। सोलन बोला कि निस्संदेह इतना "सोना" किसी बादशाह के पास

न होगा, पर कल्ह को अगर कोई बादशाह चढ़ाई करे जिस के पास "लोहा" अधिक हो तो यह सब "सोना" किस का हो जायगा !

३३१—धन के साथ दो संताप लगे रहते हैं—अहंकार और ख़ुशामदी, सो इन को साँप के समान दूर रक्खो॥

८८—उदारता—सूमता

३३२—धन की उपमा साँप को दी है जिस के सिर में विप भी होता है और मनि भी सो कंजूस के लिये तो धन विप का प्रभाव रखता है कि वह मक्खी के समान उसी की मिठास में लिपट कर मर मिटता है और उदार के लिये धन मनि है जिसे वह मुहताजों को जो मालिक के प्यारे बालक हैं देकर लोक और परलोक दोनों कमाता है। अपने अर्थ केवल पेट पालने को टुकड़ा रोटी का और तन ढकने को टुकड़ा कपड़े का चाहिये और सब यहीं छूट जाता है सिवाय उस पदार्थ के जो भगवत सेवा में और सच्चे मुहताजों की ज़रूरत पूरी करने में ख़र्च किया गया, और यही धनो के संग जाता है—हातिम

३३३—माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जा को चीठी ऊतरी, सोई खरचनहार॥
—कबीर

३३४—जिन का धन उन का चाकर है वह बड़भागी हैं पर जो धन के चाकर हैं वह अभागी—हसन

३३५—कंजूस की गनित विद्या की पढ़ाई "जोड़ती" से शुरू होती है और उस के लड़कोँ की "भाग" से ॥

अभिप्राय यह है कि कंजूस बाप धन बटोरता है जिसे उस की संतान लुटाती हैं ।

३३६—जिस ने सम्पत में बोया नहीँ वह बिपत में क्या काटेगा ॥

३३७—जो आदमी अपनी दौलत को न आप भोगता है और न दूसरोँ को देता है वह बेगार के मजूरे और गड़े धन के रखवाले साँप के समान है ॥

३३८—शेख़ सादी ने कहा है कि आदमी मालदार होने से धनी नहीँ कहा जा सकता वरन उदार-चित्त होने से । जो दूसरोँ को खसोट कर धनवान बना है वह सूतकी है; जो सचाई और ईमानदारी के कारन निर्द्धन है वह अति शुद्ध—सादी

३३९—नाक भौंव चढ़ाकर देना सभ्यता के साथ इनकार करने से बुरा है । लालची धनी ग़रीब से ज़ियादा मुहताज है ॥

८८—वारा, किफ़ायत

३४०—व्यय के विषय में लुटाव और सूमता दोनोँ बुरी हैं उदारता भारी गुन है, पर वारा और ख़र्च की सम्हाल उस के विरुद्ध नहीँ है । सच पूछो तो जैसा कि इंगलिस्तान के प्रसिद्ध और योग्य पादरी स्विफ्ट ने लिखा है उदारता और सम्पत वारे की सन्तान हैँ—सीमंड

३४१—एक बुद्धिमान ने कहा है कि जो तुम अपने बेटे को आदमी बनाया चाहते हो तो पहली जुगत यह है कि उसकी आदत अपनी कमाई से गुज़र करने की डालो फिर दूसरी जुगत यह होगी कि उसको अपनी आमदनी में से कुछ बचा रखना सिखाओ ॥

३४२—असल गुर बारे के दो हैं, एक तो यह कि जो चीज़ मौजूद नहीं है उस के बिना काम चला लेना, दूसरे जो मौजूद है उस को सम्हाल कर ख़र्च करना। और कितनी ही छोटी छोटी बातें हैं जिन पर ध्यान रखने से लाभ होगा, जैसे—(१) जितना कमाओ उस में से कुछ बचा रक्खो, (२) जो चीज़ मोल लो उस का दाम तुरत चुका दो उधार का लेखा न रक्खो क्योंकि उधार बढ़ने से या तो आप ठगे जाने का डर है या उधार बहुत बढ़ जाने पर तुम्हारी ही नीयत खोटी हो जाय तो अचरज नहीं है, (३) आगे फ़ायदा होने की कच्ची आस पर ज़ियादा ख़र्च न करो,(४) अपनी आमदनी और ख़र्च का हिसाब रक्खो, (५) आप या अपनी स्त्री के द्वारा ध्यान रक्खो कि हर चीज़ ठिकाने से है जतन से उठाई धरी जाती है और किसी चीज़ का बेजा ख़र्च या नुक़सान नहीं होता ॥

३४३—कहावत है कि परिश्रम से आदमी थैली और बारे से उसके मुँह बाँधने की डोरी पाता है। दोनों बिना दाम दिये मिलते हैं पर जो थैली का मुँह बाँधना सीख लेगा उसे काम पड़ने पर थैली के भीतर से ख़र्च को मिल जायगा ॥

३४४—धन का दाहिना हाथ परिश्रम और बायाँ हाथ वारा है ॥

८०—ऋण, उधार

३४५—उधार लेने से जहाँ तक हो सके बचो क्योंकि इस से आदमी सब की निगाह में तुच्छ हो जाता है और जायदाद के लिये तो ऋन ऐसा है जैसा काठ के लिये घुन—हुरमुज़

३४६—मित्रों में लेन देन मित्रता की कतरनी समझो—सादी

३४७—उपास करके सो रहना अच्छा है पर ऋन में जागना बुरा ॥

८१—माँगना

३४८—माँगने से बढ़कर कोई अधम काम नहीं है—

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह ।
ये तीनों जबही गये, जबहि कहा कछु देह ॥

३४९—मान बड़ाई प्रीत माँगने से नहीं रहती । परंतु पर-उपकार के लिये माँगने में हर्ज नहीं है जैसा कि कबीर साहिब ने कहा है—

मर जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज ॥

९२—दशमांश दान

३५०—परमार्थ और पर-उपकार के काम और ख़ैरात वग़ैरह के लिये हर किसी पर फ़र्ज है कि एक बँधा हुआ हिस्सा अपनी अमादनी का अलग करता रहे। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब मतों में आमदनी का दसवाँ हिस्सा इस काम के लिये मुक़र्रर किया गया है लेकिन जिस की आमदनी कम होने के सबब से दसवाँ हिस्सा देने की समाई न हो उस के लिये संतों ने फ़रमाया है कि सोल्हवाँ हिस्सा यानी रुपये में एक आना देना काफ़ी है—जो इतना भी न करेगा उस की कमाई अशुद्ध और बेबरकत रहेगी॥

९३—दान का पात्र

३५१—दान दरिद्री को देने से विशेष फल होता है। औषध और भोजन रोगी और भूखे को देना चाहिये भले चंगे और पेट-भरे को नहीं। जो लोग दान देने की जगह और अवसर और दान लेने वाले की पात्रता को विचार करके दान देते हैं वह दान सात्विकी है और जो दान इस बिचार से ख़ाली है उसका दरजा भी कम है—हित०

---

३५२ महाभारत में लिखा है कि "दान पात्र को देना चाहिये जिस को उस की ज़रूरत है"। लोग पेट-भरे ब्राह्मनों का तो भोज रचते हैं पर भूखों को चाहे वह किसी जाति के हों खिलाने का महात्म नहीं जानते। कबीर साहिब ने कहा है—

कबीर हरि के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै कछु हरि का नाम लें, कै भूखे को देय॥

३५३—परंतु ऐसे भूखे और मुहताज दान के पात्र नहीं कहे जा सकते जिन को पौरुष है पर भीख माँगना और बिना परिश्रम का खाना अपना उद्दिम कर लिया है, वरन ऐसे जो मिहनत करने पर भी अपने कुटुम्ब का पालन नहीं कर सकते, बूढ़े और अंग-हीन किसान जिन के दुर्भाग से खेत में अन्न नहीं उपजा है, अनाथ, इत्यादि—ऐसों के देने को ईश्वर अपने ऊपर उधार समझता है॥

३५४ मनुष्य का धर्म है कि अपने निर्द्धन कुटुम्बी और दूसरे दुखियों की यथाशक्ति सहायता करे, भूले को राह बतावे और भूखे को अपनी रोटी में से आधी बाँट कर खाय क्योंकि हम सब एक ही परम पिता के बच्चे हैं—सेनेका

३५५ किसी को अनादर या अपमान के साथ दान न दो क्योंकि ऐसा करने से उसका फल जाता रहता है—रामा० वा०

३५६ पूरा मर्द वह है जो देता है और आप नहीं लेता, और आधा मर्द वह है जो लेता है और देता है, और नामर्द वह है जो लेता है और देता नहीं॥

३५७ किसी ने भक्त बशरहाफ़ी से कहा कि मेरे पास हज़ार दीनार हैं उन से मैं हज किया चाहता हूँ आप क्या कहते हैं। भक्त बोला कि किसी ऋनी या धनहीन कुटुम्बी को दे डालो क्योंकि एक सुपात्र गृहस्थ की दुख में सहायता करना हज़ार बार मक्के की यात्रा करने से बढ़कर है। इस पर

धनी बोला कि मेरी रुचि तो मक्के ही की है। भक्त ने कहा कि यह प्रमान इस बात का है कि तेरा धन पापों से बटुरा है इस कारन तू उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकता—त० औ०

३५८—सब से अच्छी जुगत सहायता की यह है कि निरावलम्ब को कमा खाने की राह में लगा दे॥

८४—ब्राह्मन, जाति भेद

३५९—ब्राह्मन वही है जिस ने ब्रह्म को पहचाना और जिस की रहनी निर्विकार और बिवेक संयुक्त है, ब्राह्मनी की कोख से जनमने ही से कोई ब्राह्मन पदवी का अधिकारी नहीं होता

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेद पठनात् भवेद् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

—मनु

अर्थात् जनमने पर शूद्र, जनेव लेने पर द्विज, वेद पढ़ने पर विप्र और ब्रह्मसे परिचय होने पर ब्राह्मन होता है॥

३६०—यद्यपि ब्राह्मन को दान लेना बर्जित नहीं है पर हर एक से लेते फिरना निषिद्ध है क्योंकि ऐसा करने से उस का ब्रह्म तेज जाता रहता है—अष्ट पाद

३६१—नारद मुनि का बचन है कि वास्तव में जाति भेद कोई चीज नहीं है समस्त सृष्टि में ईश्वर व्यापक है जाति भेद कर्म अनुसार हो गया है॥

विद्या ऊँची और नीची श्रेनी के भेद के परे है अर्थात्

इस भेद को कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता, ऐसी भूल को मन में कभी न धसने दो—प० पु०

८५—ऊँचे ऊँचा और नीच नीचा काम करते हैं

३६२—जो लोग पढ़े लिखे और ऊँचे, हौसले के हैं वह ऊँचा काम करते हैं नीचा काम नहीं करते। कुत्ता हड्डी या माँस का छीछड़ा पाकर अपना पेट भर लेता है पर सिंह भूख से बेकल होने पर भी स्यार को नहीं मारता चाहे वह सामने भी आजाय। जो जैसा है उस की क़दर और मोल उस की हैसियत पर होता है। कुत्ता मालिक के सामने बैठ कर दुम हिलाता और धरती पर लोट कर प्रीत दिखाता है तब एक टुकड़ा रोटी का मिलता है और हाथी बिना मालिक की खुशामद किये अपनी जगह पर मस्त खड़ा मनों रातिब पाता है—हित०

३६३—नीच को उस की पात्रता से बढ़ कर अधिकार न देना चाहिये, नहीं तो गंजे के नाखून से भी अधिक बुराई पैदा करेगा, क्योंकि यह तो अपने ही सिर से लोहू बहा लेगा और वह कितने सिरों को लोहू लोहान कर देगा—नीति

८६—गुप्त बात

३६४—जिस भेद को छिपाया चाहते हो उसे मित्र से भी न कहो क्योंकि मित्र के और भी मित्र होंगे। इसके सिवाय जो कभी उससे बिगाड़ हो गया तो पूरा डर उस भेद के खुल जाने का है—सादी

३६५—जिस ने इतना भी लखा दिया कि उस के पास कोई भेद है उस ने आधा भेद तो खोल दिया और बाक़ी आधा जल्द खुल जायगा—लुक़०

---

३६६ किसी भोले आदमी ने अपना भेद दूसरे से कह कर ताकीद की कि उसे गुप्त रखना। जवाब दिया कि "डरो मत जैसा तुम ने गुप्त रक्खा वैसा ही मैं भी रक्खूँगा"॥

३६७—नौकर से अपना भेद कहना उसे सेवक से स्वामी बना लेना है—अरस्तू

३६८—अगर किसी को मित्र बनाओ और फिर उसे भरोसे के योग्य न पाओ तो उस के साथ ऐसे विचार से बरतो कि शत्रु न बन जाय—फ़ीसा०

३६९—किसी की बात उस के शत्रु से ऐसी न कहो कि जो वे आपस में मित्र हो जायँ, तो तुम्हें लज्जित होना पड़े—अरस्तू

८७—बचन या आस देना

३७०—अपनी सामर्थ्य देखकर किसी को बचन दो और जब दिया तो उसे जैसे बने पूरा करो। अच्छे लोग कहते थोड़ा और करते बहुत हैं—पा० भा०

८८—अतिथि-सत्कार, मिहमानदारी

३७१—गृहस्थ का धर्म है कि अपने घर पर शत्रु भी आवे तो उस का आदर सत्कार करे जैसे पेड़ अपनी छाँह काटने-

वाले से भी जो उस के निकट जाय नहीं हटाता जब तक कि आप गिर न जायं। अतिथि-सत्कार में चूकने वाला पतित होता है—मनु०

३७२—अतिथि-सत्कार में कसर करना दरिद्रता की दरिद्रता है और मूर्ख से न अड़ना शूरता की शूरता—पा० भा०

३७३—परंतु नीति शास्त्र इस विषय में इतनी सम्हाल रखना सिखलाता है कि अनजाने आदमी से जिस का घर और चाल व्योहार न जानते हो न तो मित्रता करो और न उस को अपने घर टिकाओ, न जानें वह कैसा हो ॥

८८—फुटकर

३७४—जो काम रुपये से निकले तो देकर झगड़े से अपना जी बचाओ—सादी

३७५—दुखदाई समाचार भर-सक तुम न सुनाओ, कोई न कोई सुना ही रहेगा—सादी

३७६—अगर नौकर कभी बहरा बन जाय तो मालिक को चाहिये कि वह भी कभी कभी अंधा बन जाय॥

३७७—जो तुम्हारे आधीन हैं उन को तुच्छ निगाह से न देखो ॥

३७८—जब कोई तुम्हारे संग भलाई करे उस का जी से निहोरा माने, किसी का इहसान भूल जाना बड़ा ओछापन है॥

३७९—कहा है जिस सभा में कोई बूढ़ा न हो उस की शोभा नहीं और उस बूढ़े से शोभा नहीं जो धर्म न जानता हो और वह धर्म नहीं जिस में सच न हो, और वह सच नहीं जिस में दया न हो—हित०

३८०—राजाओं को वही सीख देने की योग्यता रखता है जो न अपना सिर कटने की परवाह करता न इनाम की—सादी

३८१—प्रिय क्या है ? करना और न कहना—अप्रिय क्या है ? कहना और न करना—जालीनूस

३८२—जो संशय-आत्मक है, जिस का मन सदा डावाँ-डोल रहता है, जो किसी का विश्वास नहीं करता और हर एक को बेईमान और धोखेबाज़ समझता है, जो डरपोक है और हर बात में आगा पीछा किया करता है, जो चिन्ता की नदी में सदा डूबा रहता है, जो इन्द्रियों के वशीभूत है—ऐसा आदमी कितनाही धन और अधिकार रखता हो बड़ा अभागी है, उस को सुपने में भी सुख नहीं मिल सकता —जैन०

३८३—आगम जानने का उद्योग करना बड़ी भूल है क्योंकि जिस आफ़त को हम रोक नहीं सकते उस की अगवानी करना मूर्खता की बात है—सिसिरो

३८४—दो आदमी थोड़ी सी भूमि के लिये झगड़ते हुए हज़रत ईसा के पास गये और कहा आप न्याव कर दीजिये कि यह भूमि किस की मिलकियत है। ईसा बोले कि भूमि तो और ही कुछ कहती है। पूछा क्या ? जवाब दिया कि वह कहती है कि तुम दोनों उस की मिलकियत हो—ख़ारिस्तान

३८५—अचरज है कि आदमी वह बात तो नहीं करता जो उस के बस में है यानी अपने अवगुनों को तो नहीं छोड़ता पर दूसरों के छुड़ाया चाहता है जो उसके बस में नहीं है-मा० आ०

३८६—कैसे अचरज की बात है कि कितने ही आदमी आप तो अपने समय के अच्छे लोगों की जिन्हें वह जानते हैं ईर्षा-वश सराहना नहीं करते पर अपनी कीर्ति की आस होनहार सृष्टि से रखते हैं जिस ने उन्हें सुपने में भी नहीं देखा—यह वैसा ही पागलपन है जैसे कोई पिछली सृष्टि से अपनी स्तुति की आस करे—मा० आ०

३८७—ऐसे ही यह भी अचरज की बात है कि हर कोई यद्यपि अपने को सब से अधिक समझदार गिनता है पर अपनी बाबत औरों की राय का मुहताज रहता है यानी दूसरों की राय की अपनी राय से ज़ियादा कदर करता है लेकिन अगर कोई दैवी शक्ति उस के अंतर को उलटकर लोगों को दिखा सके कि भीतर क्या भगार भरी है और कैसे कैसे गुनावन सवेरे से साँझ तक मन में उठते हैं तो वह इस कलई

खुलने को एक दिन के लिये भी मंज़ूर न करेगा इस से जान पड़ता है कि आदमी दूसरों की राय से डरता है—मा० आ०

३८८—फ़ीसागोरस यूनान के हकीम अपने शागिर्दों को शिक्षा देते थे कि बड़े सवेरे उठ कर आकाश में तारों को देखो और विचार करो कि वह एक-रस, स्थिर और निर्विकार होने के कारन बेधड़क विना किसी परदे के सदा तैयार हैं कि जो चाहे उन की निरख परख कर ले—ऐसे ही तुम बन जाव—मा० आ०

१००--मिश्रित शिक्षाएँ

३८६—जुआ न खेलो, थारे (किफ़ायत) की आदत डालो, जो कुछ तुम्हारा है उसे बहुत समझो और उसी में मगन रहो—ऋग्वेद

३६०—हज़रत मुहम्मद ने कहा है कि ख़ुदा तीन को नापसंद और तीन को बहुत नापसंद करता है—(१) कुकर्मी को नापसंद और बूढ़े कुकर्मी को बहुत नापसंद (२) कंजूस को नापसंद और धनी कंजूस को बहुत नापसंद, (३) अहंकारी को नापसंद और अहंकारी साधू को बहुत नापसंद। इसी तरह ख़ुदा तीन को पसंद और तीन को बहुत पसंद करता है—(१) भक्त को पसंद और जवान भक्त को (अर्थात् जो भरी जवानी में भक्ति कमाता है) बहुत पसंद, (२) सूरमा को पसंद और सूरमा साधू को बहुत पसंद, (३) दीन को पसंद और धनवंत दीन को बहुत पसंद—त० औ०

३९१–काम की कठिनता से हिम्मत न हारनी, लोभ (तरग़ीब) से बचना, दुख और मुसीबत में धीरज रखना इन्हीं बातों से आदमी बनता है–आवरवरी

३९२–(१) कड़वी बात का मीठा जवाब देना, (२) जब क्रोध बहुत भड़के चुप साधना, (३) दंड के भागी को दंड देने के समय चित्त को कोमल रखना यही नम्रता के लच्छन हैं।

—बुज़ुर०

३९३–तीन बातें प्रशंसनीय हैं–(१) क्रोध में छिमा, (२) टोटे में उदारता, (३) अधिकार में सहन–इद्रीस

३९४–तीन चीज़ों के बढ़ाने में अपनी सम्हाल रक्खो क्योंकि उन्हें जितना बढ़ाओगे बढ़ती जायँगी–(१) भूख, (२) नींद, (३) डर–अफ़०

३९५–तीन चीज़ों की महिमा तीन आदमी जानते हैं (१) जवानी की महिमा बूढ़े, (२) आरोग्यता की महिमा रोगी, (३) धन की महिमा निर्द्धन ॥

३९६–तीन बातों से बचो तो तुम्हें लोग पसंद करेंगे–(१) किसी से कुछ न माँगो, (२) किसी को बुरा न कहो, (३) किसी के मिहमान के पीछलग्गू होकर बे बुलाये न जाव–नीति

३९७–तीन वस्तु बिना तीन वस्तु के नहीं ठहर सकतीं–(१) धन बिना बनिज के, (२) विद्या बिना शास्त्रार्थ के, (३) राज बिना शासन के–सादी

३९८—(१) आकाश का रत्न सूरज है, (२) घर का रत्न बच्चा, (३) सभा का रत्न बुद्धिमान—लंका

३९९—लुक़मान का कथन है कि चारहज़ार वचनों में से चार गुर मैं ने चुने हैं जिन में से दो को सदा याद रखना चाहिये यानी मालिक और मौत, और दो को भूल जाना चाहिये यानी भलाई जो तू किसी के साथ करे और बुराई जो कोई तेरे साथ करे ॥

४००—चार बातें सदा याद रक्खो—(१) बुरी बात पर बिश्वास करने में चौकन्ने रहो और उसे अपने मुँह से निकालने में विशेष चौकन्ने रहो, (२) हर चीज़ को आँख खोलकर देखते रहो पर मन में भर्म न लाओ, (३) दूसरों के भेद के जानने का जतन न करो, (४) जो बात बेठिकाने की जान पड़े उस पर विश्वास न करो पर बिना पूरी जाँच किये उसे उड़ा भी न दो—मनु०

४०१—चार बातें न भूलो—(१) बूढ़ों का आदर करना, (२) छोटों को सलाह देना, (३) बुद्धिमानों से सलाह लेना, (४) मूर्खों के साथ न उलझना ॥

४०२—चार तरह के आदमी होते हैं—(१) मक्खीचूस कि न आप खाय न दूसरे को दे, (२) कंजूस कि आप तो खाय पर दूसरे को न दे, (३) उदार कि आप भी खाय और दूसरे को भी दे, (४) दाता कि आप न खाय और दूसरे को

दे। सब लोग यदि दाता नहीं बन सकते तो उदार तो अवश्य ही होना चाहिये—अफ़०

४०३—संकट में मित्र की पहचान होती है, रन में शूरवीर की, ऋन में साहु की, टोटे में अपनी स्त्री की, रोग सोग में नातेदारों की—हित०

४०४—(१) क्या देना अच्छा है? "भोजन"; (२) क्या न देना अच्छा है? "गाली"; (३) क्या खाना अच्छा है? "गम" (सब्र);(४)क्या न खाना अच्छा है? "हराम का" ॥

४०५—(१) बाँझ स्त्री को घर, (२) मित्र-हीन को मन, (३) आलसी को लोक, (४) निर्द्धन को लोक परलोक दोनों उजाड़ दीखते हैं—हित०

४०६—चार चीज़ें आप से आप आती हैं—(१) खुशी, (२) रंज, (३) रोज़ी (जीविका), (४) मौत ॥

४०७—चार चीज़ें जाकर फिर नहीं आतीं—(१) छूटा हुआ तीर, (२) मुँह से निकली बात, (३) बीती हुई उमर, (४) टूटा हुआ दिल ॥

४०८—हम ने सैरे जहानि फ़ानी * देखी।
सब चीज़ यहाँ की आनी जानी देखी ॥

---

* असार संसार

जो आ के न जाय वह बुढ़ापा देखा।
जो जा के न आय वह जवानी देखी॥

४६६—संसार में आदमी को चार बातें बिगाड़ने वाली हैं जिन में पूरी सम्हाल की ज़रूरत है—(१) जवानी, (२) धन, (३) अधिकार, (४) अविवेक—और जो कोई इसी के साथ मूर्ख भी हो तो उस का कहाँ ठिकाना लग सकता है॥

४१०—(१) धन उदारता संयुक्त, (२) दान कोमल वचन संयुक्त, (३) ब्रह्म विद्या दीनता संयुक्त, (४) शूरता दया संयुक्त—यह चार गुन विरले बड़भागी में होते हैं—हित०

४११—चार चीज़ें पहले निर्बल दीखती हैं पर आगे चल-कर अपना ज़ोर दिखाती हैं—(१) शत्रु, (२) आग, (३) रोग, (४) ऋन॥

४१२—चार चीज़ें आदमी को भाग से मिलती हैं—(१) लज्जा, (२) चित्त की निर्मलता, (३) दृढ़ता, (४) धीरता॥

४१३—चार चीज़ों पर भरोसा न करना चाहिये—(१) राजा की कृपा, (२) शत्रु की सलाह, (३) ओछे की प्रीति, (४) ख़ुद-मतलबी की बात॥

४१४—पाँच आदमियों के संग से बचना चाहिये—(१) झूठा क्योंकि वह धोखे में डालेगा; (२) मूर्ख क्योंकि गो वह

तुम्हारा फ़ायदा चाहे पर उस से घाटा ही होगा; (३) कंजूस जिस की छाया से मन में छोटापन और कठोरता आवेगी; (४) डरपोक क्योंकि वह गाढ़ के समय अलग हो जायगा; (५) दुष्ट जो खोड़ी के लिये मस्जिद ढा देगा ॥

४१५—शाह नौशेरवाँ के बेटे हुरमुज़ बादशाह के पाँच गुन प्रसिद्ध हैं—(१) किसी को गाली नहीं देता था, (२) भलाई करने के लिये किसी से सलाह नहीं लेता था, (३) दंड देने के पहले तीन बार सलाह पूछता था, (४) नशे की चीज़ों से जिन से समझ जाती रहती है परहेज़ करता था, (५) क्रोध के समय किसी से बोलता नहीं था ॥

४१६—जल्दी काम शैतान का है सिवाय पाँच अवसरों के—(१) मिहमानों का खिलाना, (२) लड़कियों का ब्याह, (३) देन का चुकाना, (४) पाप कर्म का त्याग, (५) मुरदे का संस्कार—हातिम

४१७—कहा है कि इन छः से हानि नहीं हो सकती है—(१) बुद्धिमान मित्र, (२) विद्वान पुत्र, (३) पतिव्रता स्त्री, (४) कृपाल स्वामी, (५) सोच समझ कर बात कहनेवाला, (६) विचार कर काम करनेवाला—हित०

४१८—कहा है कि (१) मित्र वह है जो गाढ़े में काम आवे, (२) अच्छा काम वह है जिस से बड़ाई मिले, (३) नौकर वह है जो आज्ञा माने, (४) विद्वान वह है जिस को अहंकार नहीं

है, (५) ज्ञानी वह है जिस ने लालच छोड़ दिया है, (६) मर्द वह है जिस ने अपनी इन्द्रियोँ को जीता है, (७) मंत्री वह है जो मनसा वाचा कर्मना मालिक का शुभ-चिन्तक है—हित०

४१९—कहा है कि (१) गर्व से लक्ष्मी का नाश होता है, (२) बुढ़ापे से बल का, (३) बुद्धिमान के मिलने से संदेह का, (४) आलस से विद्या का, (५) अनरीत से प्रताप का, (६) घटियाई (बद मुआमलगी) से ब्योहार का, (७) क्रोध से बिचार का—हित०

४२०—मालिक आठ आदमियोँ मेँ आठ आदतेँ नहीँ पसन्द करता—(१) धनियोँ मेँ कंजूसपन, (२) साधुओँ मेँ अहंकार, (३) विद्वानोँ मेँ लालच, (४) स्त्रियोँ मेँ निर्लज्जता, (५) जवानोँ मेँ आलस, (६) बूढ़ोँ मेँ संसार की चाह, (७) बादशाहोँ मेँ अन्याय, (८) अभ्यासियोँ मेँ पाखंड ॥

४२१—नौ चीज़ेँ आदमी के चैन की घातक हैँ—(१) अहंकार, (२) क्रोध, (३) द्रोह, (४) ईर्षा, (५) निन्दा, (६) भर्म, (७) लालच, (८) आलस, (९) शोक ॥

४२२—ग्यारह भारी भूल हैँ जिन से बचो—

(१) क्या उचित और क्या अनुचित है इस का आप ही निर्नय करके लोगोँ को भला या बुरा समझना ।

(२) जिसे तुम सुख मानते हो समझना कि उसे सब सुख मानते हैँ ।

(३) ऐसा समझ लेना कि तुम्हारी ही सी औरों की भी राय है।

(४) जवानी में अपने सोच और समझ को पक्का गिनना।

(५) यह जतन करना कि सब का सुभाव और व्योहार तुम्हारे सा हो जाय।

(६) छोटी सी बात पर अपना ख़याल पलट देना।

(७) जो बात जतन से बाहर है उस के लिये आप कष्ट उठाना और दूसरों को हैरान करना।

(८) यह समझना कि जो हम से नहीं हो सकता वह किसी से न हो सकेगा।

(९) दूसरों के ऐब पर परदा न डालना।

(१) जितना अपने मन को भाता है उतना ही सच मानना और यह ख़याल करना कि तुम ने सब बातें समझ लीं।

(११) लोगों को अपनी आँखों के सामने लगातार मरते हुए देख कर भी अपनी मौत को भूले रहना॥

१०१—भर्तृहरि महाराज के ८ मूल उपदेश

४२३—

(१) विश्वास-घात या छल सब से बड़ा पाप है।

(२) लालच भारी अवगुन है।

(३) सत्य तप से श्रेष्ठ है।

(४) पवित्रता और निर्दोषता यज्ञ से उत्तम है।

(५) प्यार सहित उपकार सब गुनों में शिरोमनि है।

(६) गौरव या गंभीरता सब से बड़ी शोभा है ।

(७) विना किसी सहायक के भी ज्ञान की सदा जय है ।

(८) मरना लोक-अपमान से अच्छा है ॥

१०२—बेन्जमिन फ्रैंकलिन के प्रति दिन बरताव के १३ नियम

४२४—

(१) संजम—इतना मत खाव जिस से आलस आवे ।

(२) मौन—वही कहो जिस से दूसरे का या अपना भला हो, छिछोरी बातोँ से बचो ।

(३) क्रम (सिलसिला)—अपनी सब वस्तुओँ के लिये उचित स्थान और हर काम के लिये नियत समय रक्खो ।

(४) दृढ़ संकल्प—अपने कर्तव्य का दृढ़ संकल्प रक्खो व संकल्प के पालन मेँ मत चूको ।

(५) वारा (किफ़ायत)—उतना ही ख़र्च करो जो दूसरे के या तुम्हारे उपकार के लिये आवश्यक है, व्यर्थ व्यय न करो ।

(६) परिश्रम—समय मत खोओ, सदा किसी न किसी उपकार के काम मेँ लगे रहो; वेमतलब कामोँ से बचो ।

(७) सचाई—हानिकारक धोखे से परहेज़ करो; अपना विचार निर्दोष और न्यायसंयुक्त रक्खो और जब बोलो तो इसी भाव से बोलो ।

(८) न्याय—किसी का अपकार करके या ऐसा उपकार न करके जो तुम्हारा धर्म है उसे हानि न पहुँचाओ।

(९) सहज सुभाव (मध्य ब्योहार)—ठिकाने की चाल चलो कभी हद के बाहर न जाव। अपनी हानि करने वाले को जहाँ तक बन पड़े छिमा करो।

(१०) स्वच्छता (सफ़ाई)—शरीर, कपड़ा और घर सदा साफ़ सुथरा रक्खो।

(११) शांति—छोटी छोटी बातों से या ऐसे दैवयोग दुखों से जो सब को भुगतने पड़ते हैं और जिन पर किसी का बस नहीं है घबरा न जाव।

(१२) ब्रह्मचर्य—अर्थात् मर्द के लिये अपनी पत्नी और स्त्री के लिये अपने पति के सिवाय दूसरे को बहिन और भाई के भाव से देखना।

(१३) दीनता—सतपुरुषों की रहनी रहो।

इन महापुरुष ने एक नोट बुक बना रक्खी थी जिस के एक एक पृष्ठ में ऊपर का एक एक गुन लिखा था और एक सप्ताह तक एक गुन के सम्बन्ध में अपनी परीक्षा कर के अपने को नम्बर देते थे। वह लिखते हैं कि कुछ दिनों तक मैं ने अपने को हर अवगुन से इतना भरा पाया कि सुपने में भी अपने को वैसा बुरा न समझा था, पर संजम और दृढ़ संकल्प से वह अवगुन धीरे धीरे घटते गये॥

१०३---मनुजी की शिक्षा

४२६—(१) संतोष करना, (२) बुराई के बदले भलाई करना, (३) मन और इंद्रियों पर दबाव रखना और भोग बिलास से बचना, (४) अधर्म से धन न कमाना, (५) महात्माओं के वचन पर चलना, (६) सत्य और न्याय का पालन करना, (७) क्रोध को रोकना, (८) मर्यादा की चाल चलना और टेढ़ी राह न जाना, (९) हाथ पाँव जीभ आँख को चंचल न होने देना, (१०) ठठोली न उड़ाना, (११) ऐसा काम न करना जिस से लोगों को आगे दुख पहुँचने का डर हो चाहे वह मर्यादा के अनुसार भी हो, (१२) भूख रख कर खाना, (१३) ईश्वर को सदा याद रखना—यह मनुष्य के धर्म हैं॥

१०४—बुद्ध महाराज के उपदेश

४२७—(१) नौकरी बुद्धिमान की करो मूर्ख से बचो, (२) सज्जनों के परोस में रहो, (३) भली कामनाओं को मन में बसाओ और बुरी कमनाओं को निकालो, (४) शांत सुभाव रहो और जब कोई दोष लगावे तो अपने मन को न बिगाड़ो, (५) सम्पत में फूल न जाव और बिपत मे पिचक न जाव, (६) दूसरे का माल बेईमानी से लेने या दबा बैठने की नीयत न करो, (७) जिन से तुम्हारा जी नहीं मिलता उनसे दूर रहो, (८) किसी को कथनी या करनी से धोखा न दो, (९) नशे की चीज़ों से परहेज़ करो॥

१०५—जापान की शिक्षा

४२८—संसार में अट्ठारह काम कठिन हैं—(१) निर्द्धन होकर दानी होना, (२) धनी और प्रतिष्ठित होकर ईश्वर सेवा में लगना, (३) प्रारब्ध से बचना, (४) इन्द्रियों और कामनाओं को दबाना, (५) अच्छी वस्तु को देख कर न ललचाना, (६) बिना उतावली या जल्दी किये दृढ़ रहना, (७) बिना क्रोध किये अपमान सहना, (८) सब संसारी वस्तुओं से संसर्ग करना पर किसी में बंधन न पैदा करना, (६) हर बात को पूरी रीत से जाँच कर लेना, (१०) मूर्ख को तुच्छ न समझना, (११) मान बड़ाई तजना, (१२) विद्वान और चतुर होने पर भी सदा भले बने रहना, (१३) जिस धर्म में लगे उस के गुप्त भेद को समझना, (१४) मनोर्थ पूरा होने पर न फूलना, (१५) अपने कर्त्तव्य में न चूकना, (१६) बुरों को भलाई की राह पर लाकर रक्षा करना, (१७) रहनी और गहनी एक रखना, (१८) वाद विवाद न करना—बुद्ध

१०६—चीन की शिक्षा

४२६—(१) अपनी निन्दा सुनकर क्रोध न करो, (२) अपनी खुशामद सुनकर उस का रस न लो, (३) दूसरों के अवगुन सुन कर हर्षित न हो, (४) दूसरों के भले गुन सुन कर उत्साह और मगनता प्रगट करो और उन गुनों को बरतो, (५) सज्जन को देख कर मगन हो, (६) सुकर्मों का वृत्तान्त सुन कर मगन हो, (७) यथार्थ नियमों का प्रचार करने में प्रसन्न हो, (८) भलाई का प्रचार करने और भलाई करने में प्रसन्न हो, (६) संसारियों की दुष्टता के समाचार से

ऐसे दुखित हो जैसे शरीर में काँटा चुभ गया हो, (१०) शुभ और पर-उपकारी कर्मों के समाचार फूल के हार की तरह पहन लो।

जो इन शिक्षाओं को बरतेगा उस के मन में वह बस जाँयगी और ऐसा मनुष्य सतमार्ग को कभी न छोड़ेगा। जो आदमी सज्जनता के व्योहार में पक्का है उसके लिये कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है—कं० चौ०

४३०—(१) धर्म का ठिकाना दूर नहीं है, जो धर्म को खोजता है उसके बग़ल ही में तो वह बसता है, जिस किसी ने एक बार भी अपना बल लगाया उस ने अवश्य पाया। सज्जन को दूसरे के दोषों के भीतर भी धर्म झलकता है।

(२) आदमी यह चिन्ता न करे कि उस को कोई उद्दिम नहीं मिलता, पहिले अपने को उस काम के करने योग्य तो बनावे।

(३) धर्म कभी अकेला नहीं रहता, जो उस को बरतते हैं उन के परोसी भी वैसे ही बन जाते हैं।

(४) हर एक गुन के उपकारी अंग को दृढ़ पकड़ो।

(५) पक्के धर्मी की बोली धीमी होती है क्योंकि जो अच्छे काम की कठिनता को जानता है वह अवश्य सम्हल कर बोलेगा।

(६) धर्म आप करने का काम है दूसरे के द्वारा नहीं बनता।

(७) बुद्धिमान किसी बात में हलचली नहीं करता बरन कभी कभी चुप रहता है पर जब धर्म का काम आ पड़े तो वह और सब काम झटपट कर फँकता है—कानफ्यू०

बुराई के बदले भलाई करने का उपदेश जो मनुजी और दूसरे महापुरुषों ने किया है उस से कनफ़्यूशियस नामी चीन देश के फ़िलासोफ़र ने असम्मति की है। वह लिखते हैं कि "बुराई के बदले भलाई की जाय तो भलाई के बदले करने को क्या रहा? भलाई के बदले भलाई करना और बुराई के बदले "न्याय" का बरताव करना उचित है" ॥

१०७—पारसी शिक्षा

४३१—(१) किसी को झूठा कलंक न लगाओ क्योंकि और राक्षस तो आगे आकर चोट करते हैं पर यह राक्षस पीछे से घात करता है, (२) लोभ न करो क्योंकि इस से संसार का स्वाद फीका पड़ जाता है और जीवात्मा का आनन्द नहीं आता, (३) क्रोध न करो क्योंकि ऐसी दशा में आदमी धर्म को भूल जाता है, (४) चिन्ता को दूर रक्खो क्योंकि इस से शरीर और आत्मा दोनों छीन होते हैं, (५) कुकर्म से बचो नहीं तो उस के प्रवाह में बह जावगे, (६) द्रोह को चित्त से निकालो नहीं तो जीवन कड़वा हो जायगा, (७) पाप कर्म से लज्जा-वश दूर भागो, (८) आलस की नींद में न सोवो नहीं तो भलाई करने का अनमोल समय निकल जायगा, (९) व्यर्थ गप न करो, (१०) सदा परिश्रमी और सावधान रहो अपने पसीने की कमाई खाव और उस में से एक भाग ईश्वर की राह में ख़र्च करने को निकाल रक्खो यह सब से ज़रूरी बात है, (११) दूसरों के माल पर निगाह न करो, (१२) शत्रु के साथ झगड़ा आ पड़े तो यथार्थ पर ध्यान रक्खो, (१३) मित्र के साथ उस की रुचि अनुसार बरतो, (१४) दुष्ट से झगड़ा न ठानो और उसे किसी तरह न छेड़ो, (१५) लालची

को साक्षी या अगुआ न बनाओ, (१६) अनसमझ से एका और मूर्ख से विवाद न करो, (१७) बुरे सुभाव वाले का उधार न काढ़ो, (१८) झूठ बोलने वाले के संग राजद्वार पर मत जाव ॥

१०८—रूम (तुर्किस्तान) की शिक्षा

४३२—जो लोग विद्या और धर्म के सागर हैं उनके बचन खोज कर अनमोल मोती के समान जतन से रक्खो।

बहुत से लोग मूर्ख बने रहते हैं क्योंकि उन्हें सुनने का ढंग नहीं है। आदमी अपना दर्पन आप है।

मूर्खता सदा बना रहनेवाला बचपन है और आलस लाता है जिससे हर एक बुराई पैदा होती है।

बहुत जीने से आदमी उतना नहीं सीखता जैसा बहुत देखने से, तजरबे से आदमी चतुर बनता है।

एक एक सीढ़ी चढ़ने से आदमी छत पर पहुँचता है। अपनी आँख आप खोलो नहीं तो कष्ट खोलेगा ॥

१०९_इबरानी शिक्षा

४३३—(१) झूठी खबर न उड़ाओ, (२) बुरे से मेल न करो, (३) बड़ों का संग अधर्म मेँ न करो, (४) ग़रीब की पच्छ अनुचित व्योहार मेँ न करो, (५) तुम्हारे शत्रु का बिचरा हुआ बैल या गधा तुम्हें मिले तो उस के घर पहुँचा दो, (६) घूस न लो और परदेशी को न सताओ, (७) छः दिन काम करके सातवेँ दिन आराम करो और अपने साथियोँ और जानवरोँ को भी आराम दो, (८) मा बाप को पूज्य मानो, (९) धर्म-शील

रहो, (१०) जब खेत काटो या अंगूर तोड़ो तो थोड़ा सा बटो-ही और भूखे दूखे के लिये छोड़ दो, (११) चोरी और झूठा व्योहार न करो, (१२) अपने परोसी के साथ अत्याचार न करो, (१३) मजूर की मजूरी रात भर रोक न रक्खो, (१४) बहरे की ठठोली न उड़ाओ, (१५) अंधे की राह में ठोकर खाने को ढोंका न रक्खो, (१६) न्याव बेलाग लपेट के करो, (१७) मुख़बिरी न करो और चुग़ली न खाव, (१८) अपने परोसी को बुरे काम करने पर डाँटो और आगे को पाप कर्म से बरजो, (१९) किसी से वैर न रक्खो और न बदला लेने का इरादा करो और न खोटी निगाह से देखो, (२०) आगम जानने का जतन मत करो और न लगन महूरत का बिचार करो, (२१) बूढ़ों का खड़े होकर सत्कार और सब प्रकार प्रतिष्ठा करो, (२२) धरती को वेच न डालो॥

लोक परलोक हितकारी
भाग २—परलोक

१—संसारी झंझट में परमार्थ

अक्सर लोगों का यह ख़्याल है कि संसार के कामों के साथ परमार्थ कमाना ऐसा असंभव है जैसा कि कालौंछ के घर में रह कर बेदाग़ बचना लेकिन यह ख़्याल उनका ग़लत है। विचारवान पुरुष दुनियाँ के सब काम करता हुआ अपने को उस की छूत से ऐसा बचा रख सकता है जैसे सीप समुद्र में रह कर एक बूँद खारे पानी का ग्रहन नहीं करती और जैसे किसी किसी टापू में मीठे पानी के सोत समुद्र के भीतर अछूते पाये जाते हैं* या जैसे मधुमक्खी गुलाब के रस को बिना उस के काँटों में उलझे चूस कर उड़ जाती है॥

२—कितने लोग जिन को परमार्थ की खटक नहीं है कहते हैं कि संसार के झगड़ों से निबट लें तब हम निश्चिन्त होकर परमार्थ में लगें। यह ऐसा है जैसे कोई समुद्र का शोर बंद हो जाने के आसरे उस में नहाने को रुका रहे॥

---

* इस तरह के कितने ही सोत चिलिडोनिया के टापुओं के पास मौजूद हैं।

३—वास्तव में संसार की झंझट और सोच आदमी की योग्यता परमार्थ कमाने की बढ़ाते हैं। किसी जिज्ञासू ने सतसंग में प्रश्न किया कि परमार्थ कमाने के लिये गृहस्थ आश्रम उत्तम है कि विरक्त, जवाब दिया कि गृहस्थ आश्रम बढ़ कर है क्योंकि जैसी गढ़त और कूटा पीसी मन की गृहस्थी की झंझट और फ़िकर में होती है वह दूसरे आश्रम में कदापि नहीं हो सकती बरन मन निडर और अहंकारी बन जाता है। इस के सिवाय जो विकारी मसाले खाने पीने से शरीर में पैदा होते हैं वह गृहस्थ की दशा में ख़ारिज होते रहते हैं नहीं तो इकट्ठे हो कर बड़ा फ़साद पैदा करें

—रा० स्वा०

४—इसी प्रसंग में शाह इबराहीम की कथा है कि एक मजूर दिन भर मजूरी की खोज में फिरा पर कहीं कुछ न मिला साँझ को जब घर लौटने लगा तो बड़ा दुखी था कि बाल बच्चों को जो भूख से बिलकते होंगे घर जाकर क्या खिलाऊँगा। रास्ते में हज़रत इबराहीम से मुलाक़ात हुई उन से अपना दुख रोया। इबराहीम बोले कि मैं ने आज तक जितनी बंदगी या ख़ैरात की है उस का सब फल तुझ को देता हूँ तू अपनी आज की परीशानी मुझ को दे दे—त० औ०

५—जो लोग क्या गृहस्थ क्या साधू ऐसा समझते हैं कि हम परमार्थ कमा रहे हैं उन की अनेक रीत हैं। कोई केवल ब्रत रखने को परमार्थ समझते हैं कोई कथा सुनने को (चाहे उस में केवल शूर वीरों की लड़ाई या परबों की

महिमा ही लिखी हो) जीव के काज बनाने को काफ़ी गिनते हैं, कोई किसी पवित्र नदी में नहाने या तीर्थ यात्रा को मुक्ति-दायक मानते हैं, कोई किसी वर्णात्मक नाम के साथ हाथ से माला फेरते रहने को उपने उद्धार के लिये बहुत समझते हैं—परंतु बिचार से देखो तो इन युक्तियों में से कोई कोई तो केवल संजम हैं और कोई कोई भर्म ॥

६—बहुत से कर्म जो लोक-दिखावे और महिमा के लिये किये जाते हैं फोक हैं। हठ-योग जिस से शरीर की शुद्धि के अर्थ उस को कष्ट देते हैं महा स्थूल क्रिया है। सच्ची शुद्धि शरीर की सुकर्म से होती है, इन्द्रियों की सच बोलने और दया से, चित्त की मन को बस में रखने आत्मा को निर्लेप करने चुप रहने और सब को सुख पहुँचाने से—महा०

७—बुद्ध महाराज के जीवन-चरित्र में उनके स्याम देश के एक भक्त ने लिखा है कि वह बहुत काल तक बड़ी कड़ी तपस्या करते रहे पर अंतर का भेद न खुला। एक दिन इसी सोच में थे कि इन्द्र का सितार बजाते दर्शन हुआ। इस सितार में तीन तार थे जिन में से एक बहुत ऊँचा चढ़ा हुआ था इस लिये उस का सुर बड़ा करकस निकलता था, दूसरा तार ढीला था इस से वह कुछ भी सुर नहीं देता था, परंतु तीसरा तार जो मध्यम और ठीक रीत से खिंचा था अति मधुर और रसीला सुर देता था। इस से उन महात्मा ने शिक्षा ली कि तार को बहुत चढ़ाने से काम नहीं सरता और तब से मध्य की चाल चलने लगे जिस से आत्मज्ञान

को प्राप्त हुए। परंतु पाँच ब्राह्मन जो इन की कड़ी तपस्या के समय बराबर साथ थे उन के जी से इन की महिमा जाती रही और उन्होंने साथ छोड़ दिया॥

२--सच्चा परमार्थ

८—संत फ़रमाते हैं कि इस समय मैं जीव का उद्धार केवल तीन बातों से होता है—(१) सतगुरु, (२) सतसंग, (३) सत्तनाम-और सब झगड़े हैं—रा० स्वा०

९—नाम से तात्पर्य धुन्यात्मक नाम से है जिस की धुन घट घट मैं हो रही है और जिस को कबीर साहिब ने "आदि नाम" कहा है—

कोटि नाम संसार मैं, ता ते मुक्ति न होय ।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझे बिरला कोय ॥
राम राम सब कोई कहै, नाम न चीन्है कोय ।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ।

इसी नाम की महिमा गुसाईं तुलसीदास जी ने लिखी है—

ब्रह्म राम ते नाम बड़, बरदायक बरदानि ।
राम चरित सत कोटि महँ, लिये महेश जिय जानि ॥

१०—अंतरी पूजा का विशेष लाभ है बाहरी पूजा का बहुत कम। जब जब अंतर अभ्यास मैं रस और आनन्द मिले उस मैं लिपट जाव और मालिक का धन्यवाद करो, पर जब कभी रस न आवे और मन रूखा फीका रहे तो उस पूजा को

निष्फल न समझो और घबरा कर छोड़ न दो; विश्वास रक्खो कि जो सेवक बिना मिहनताना पाये काम करता है उस की क़द्र मालिक ज़ियादा करता है और आगे चलकर इनाम के साथ सब दाम चुका देता है ॥

११—मालिक का सिंहासन अंतर में है—जो कोई मालिक को अपने अंतर में खोज करेगा, उसे मालिक का दर्शन प्राप्त होगा और जो कोई बाहर ढूँढ़ता फिरेगा, उसे मालिक कदपि नहीं मिलेगा—इस की मिसाल ऐसी है कि बग़ल में लड़का और शहर में ढँढोरा—छाँ० ब० म०

३--मूर्त्ति पूजन

१२—परंतु जो कोई इस भेद को नहीं जानता कि मालिक उस के घट में बिराजमान है उस को मूर्ति के रूप में उसे पूजना अनुचित नहीं है—भागवत

४--ध्यान

१३—जैसे शरीर के निरोग रखने के लिये बाहर की हवा और कसरत की ज़रूरत है इसी तरह मन के निरोग रखने के लिये ऊँचे खन की हवा में चढ़ कर थोड़े बहुत विश्राम की ज़रूरत है। हर एक को चाहिये कि थोड़ी देर एकान्त स्थान में अपने मन और सुरत को ऊपर को तान कर मालिक का स्मरन करे और जब तब अपनी दशा की निरख परख भी करता रहे। एकाग्र चित्त हो कर अपनी निरख परख करने से मन की गढ़त और सफ़ाई होती है, संसारी झगड़ों की चिन्ता

और थकावट मिटती है, दुख और क्लेश में शांति होती है और मालिक का ध्यान तो मानो उस के दरबार की हाज़िरी है वह तो काया-पलट कर देने वाली है ॥

१४—कर्म से केवल मन की शुद्धि होती है तत्व वस्तु नहीं प्राप्त हो सकती, वह तो उपासना ही से मिलती है और उस के लिये मुख्य जुगत ध्यान है—शंकर०

१५—देहधारी के लिये विदेह पुरुष का ध्यान और चिन्तवन महा कठिन है—गीता

इस का तात्पर्य यह है कि बिना जीते जागते अवतार स्वरूप या गुरू के काम नहीं चल सकता।

५—पाठ

१६—महात्माओँ के पदोँ और उपदेशोँ का चित्त लगाकर और समझ समझ कर पाठ करना बड़े फ़ायदे की बात और एक दर्जे का सतसंग है, ख़ास कर जब संसारी कामोँ के पीछे कोई अंतर अभ्यास मेँ बैठे और चित्त रूखा फीका और वासनाओँ मेँ भीना हो तो बैराग और प्रेम के घाट पर आने के लिये चितावनी विनय प्रेम के शब्द ध्यान सहित समझ समझ कर और उस का अर्थ अपने ऊपर घटा कर लय से पढ़ना बहुत उपकारी है, पाठ चाहे मन ही मन मेँ किया जाय चाहे आवाज़ से। आवाज़ से पाठ करने मेँ यह विशेष लाभ होता है कि आँख और कान दोनोँ से अंतर मेँ असर पहुँचता है आलस दूर होता है और दूसरे लोग भी पाठ को सुन कर फ़ायदा उठाते हैँ।

१७—पाठ करने या विनती करने या गुन गाने का अभिप्राय यह है कि घट में प्रेम उपजे और मालिक के चरनों से सुत लगे इस लिये जिन शब्दों से यह मतलब पूरा हो वही शब्द ठीक हैं चाहे वे पूरे सनमान के न हों और अशुद्ध भी हों। कथा है कि एक बार हज़रत मूसा ने एक अनपढ़ भक्त को देखा जो प्रेम में मग्न मालिक की विनती ऐसे शब्दों में कर रहा था जो उन को नामुनासिब मालूम हुए। उन्हों ने उसे डाँटा और बतलाया कि इस रीतसे विनती कर। वह बेचारा सहम गया और ध्यान ब्यान सब उड़ गया। इस पर आकाश-बानी हुई कि हे मूसा तुम मुझ से मेरे भक्तों का योग कराने को भेजे गये हो न कि वियोग कराने को सो तुम ने जो मेरे इस भोले भक्त को मुझ से जुदा कर दिया यह कार्रवाई तुम्हारी नापसन्द हुई। मैं अंतर भाव का भूखा हूं जो कन के समान है न कि शब्द की शुद्धता का जो भूसी के तुल्य है॥

१८—संतों की बानी का पाठ करने और याद करने से कुछ नहीं होगा जब तक कि कमाई न होगी इस वास्ते जो बचन सुनो उस की कमाई करो नहीं तो सुनना और समझना ब्यर्थ है— रा० स्वा०

६—सत्य

१६—सत्य वह है जो सदा एक रस बना रहे सो वह केवल मालिक की ज़ात है और सब पसारा असत्य है क्योंकि मायिक होने से उस का रूप बदलता रहता है—रा० स्वा०

साच बरावर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जा के हिरदे साच है, सो हिरदे गुरु आप ॥

७—शब्द अभ्यास

२०—शब्द अभ्यास के बराबर दूसरा अभ्यास नहीं है, दूसरे अभ्यास अधूरे और रास्ते में अटकाने वाले हैं। शब्द चैतन्य धार की धुन का नाम है जिस की महिमा हर मत में गाई है—योग शास्त्र में इसी को "शब्द-ब्रह्म" और "आकाश बाणी" कहा है, मुसलमानी मत में "निदा और आवाज़ि ग़ैब", ईसाई मत में "वर्ड" कहा है और उसे अनादि बताया है—रा० स्वा०

८—गुरु

२१—बिना पूरा गुरू धारन किये किसी को मालिक का दर्शन नहीं मिल सकता—निगुरा जंगली पेड़ की तरह है जिस का कोई रखवाला और सींचने वाला नहीं होता इसी कारन उस में फल नहीं लगता और लगता है तो सीठा या कड़वा—शिवली

२२—कबीर साहिब ने गुरू की महिमा में कहा है—

गुरु को कीजै डंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृंग को, वह करि ले आप समान ॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥

९—संत साध

२३—संत वह हैं जिन के दर्शन से मालिक की याद आवे और जिनके बचन में भजन का रस आवे कबीर साहिब ने कहा है—

हरि से तू जनि हेत कर, करि हरिजन से हेत।
माल मुलक हरि देत हैं, हरिजन हरि हीं देत॥

२४—बिपत में धीरज, बिभव में दया, संकट में सहन यह महापुरुषों के स्वयं लच्छन हैं—हित०

२५—कहा है तीर्थ, व्रत, यज्ञ, देवता, मन्त्र, पेड़, और खेत समय पाकर फल देते हैं परंतु सच्चे साधू बारह मास फल देते हैं—हित०

२६—किसी ने सुपने में प्रलय की लीला देखी कि एक भारी झुंड कुकर्मियों का भय और कष्ट से चिल्ला रहा है पर उन में से एक आदमी मोती की माला पहने शीतल छाँह में बैठा है। उस से पूछा कि तेरा किस कारन ऐसा आदर हुआ है जवाब दिया कि मैं ने अपने द्वारे पर अंगूर की टट्टी लगाई थी जिस की छाँह में एक बार एक महात्मा ने बिश्राम किया था—सादी

१०—सज्जन

२७—सज्जन के आठ गुन हैं—दया, छिमा, निःक्रोधता, निःलोभता, शुद्धता, शांत सुभाव, संतोष, सुकर्म—गौतम

२८—जिन्हों ने मद और तम का दमन किया है, जिन की आतमा ऊँची है, जिन का ब्योहार सतोगुनी है, जिन से

कोई जीव भय नहीं खाता और न वह किसी जीव का भय मानते, और जो सारी सृष्टि को अपना अंग समझते हैं वही बेखटके हैं—महा०

११—सतसंग

२९—सतसंग पूरे महात्मा, और सज्जनों के संग का नाम है इसे अगर निष्ठा के साथ करे तो आदमी लोहे से सोना बन जाय, बिना इस के अनुरागी का काज नहीं सर सकता—यो० वा०

३०—कबीर संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय॥

३१—संतों का सतसंग ऐसा कल्पतरु है कि सब बासना दूर कर देता है और कहते हैं कि कल्पतरु सब बासना पूरी कर देता है पर आज तक किसी को मिला नहीं। इस लिये सतसंग निज कल्पतरु हैं इस से बारम्बार सतसंग करना चाहिये बहुत न बन सके तो थोड़ा करे पर सचौटी के साथ करे कपट से न करे कि उस में कुछ फ़ायदा नहीं है।

—रा० स्वा०

३२—संग के प्रभाव का एक दृष्टाँत शेख सादी ने लिखा है कि किसी भक्त ने सुपने में एक साधू को नर्क में और एक

राजा को स्वर्ग में देख कर अपने गुरू से पूछा कि यह उलटी बात क्योंकर हुई। गुरूजी बोले कि उस राजा को साधुओं और सज्जनों के सतसंग से रुचि थी इस लिये उस ने मरने के पीछे स्वर्ग में उन्हीं के संग वासा पाया और उस साधू को राजाओं और अमीरों की संगत का शौक़ था सो वही वासना उस को नर्क में उन की मुसाहबत के लिये खींच लाई॥

१२—प्रथना

३३—मालिक से मालिक ही को माँगो उस की दात की इच्छा न करो—"अज़ ख़ुदा ग़ैरे ख़ुदा दीगर मख़ाह"। और कहा है कि जो कोई मालिक के सिवाय दूसरे पदार्थ के मिलने की भी चाह रखता है वह अभक्त और विभिचारिन स्त्री के तुल्य है जिस का पति उस को कभी नहीं अपना सकता

रा० स्वा०

३४—ऊपर का वचन गुरुमुख भक्त के लिये है। यदि कोई आरत मालिक से और किसी पदार्थ को माँगे तो इस में दोष नहीं है पर उसको मंज़ूरी नामंज़ूरी मालिक़ की मौज पर छोड़नी चाहिये जो हमारे सच्चे लाभ और हानि को समझता है क्योंकि हम निपट अनसमझ बालक हैं। इस बात को सदा याद रक्खो कि जब तुम मालिक से कोई संसारी पदार्थ माँगते हो तो असल में मालिक से मेला नहीं चाहते बरन बिछोहा, इस लिये अपनी प्रार्थना सदा इस तौर पर करो कि मेरी माँग को पूरा कर यदि तेरी मौज के विरुद्ध न हो—रा० स्वा०

३५—सुलैमान बादशाह के देहरे में दीन दुखी के लिये यह प्रार्थना करते थे—हे स्वामी तू अंतरयामी है, दुखिया को उतना ही दे जो तू उस के भले के लिये ठीक समझे इससे अधिक नहीं—टालमड (इबरानी)

१३—मालिक की सत्ता (वजूद)

३६—यह बात कि कोई मालिक और सर्व-समरथ पुरुष इस रचना का कर्ता और सम्हाल करने वाला अवश्य है रचना की दशा पर विचार करने से भली भाँत समझ में आती है कि कैसे अचरजी क़ायदे, सिल्‌सिले, कारीगरी और मतलब से हर बात रची गई है जिस की बाबत इतना कह देने से कि आप से आप उपजी हुई शक्तियों से यह रचना हुई और चल रही है किसी विचार-वान मनुष्य की संतुष्टि नहीं हो सकती—रा० स्वा०

३७—मुँह से सब कहते हैं कि मालिक घट घट में व्यापक है पर यही ख़याल अगर पक जाय कि मालिक हमारे अंग संग है और हमारी कुल करतूत और विचारों को देख रहा है तो आदमी पर ऐसा रोब मालिक का छा जावे कि वह मनसा वाचा कर्मना कोई पाप कर्म या अशुभ चिन्तवन न करे। निश्चय रक्खो कि मालिक सब छोटे बड़े कामों में माता पिता की तरह तुम्हारा सहायक है यदि तुम उसके साथ रहोगे ऊँचे चढ़ोगे और बुराई से बचोगे परन्तु अलग होने में मुँह के बल गिरोगे। उस की अप्रसन्नता का डर और इस से बढ़ कर उस के प्रसन्न करने की अभिलाषा को मन में पालने से तुम मनुष्य से देवता बन जावगे॥

३८—सच पूछो तो आदमी मालिक को न मन से जान सकता है न बुद्धि से बरन ऐसी मुहताजी से जैसी बीमार बच्चे को मा की होती है जो उसको गोद में लिये रहती है दवा और पथ देती है और हर तरह की ख़बरगीरी करती है, बच्चा अनसमझ होने से जानता नहीं कि वह कौन है पर उस पर भरोसा और प्रीत करता है ॥

१४—मालिक एकदेशी और सर्वदेशी

३९—मालिक एक-देशी हैं यद्यपि उस का प्रकाश समस्त श्रृष्टि में फैला हुआ है जिस से वह सर्वदेशी भी कहा जा सकता है, जैसे सूरज एक-देशी है यद्यपि अपने प्रकाश से पृथ्वी मंडल भर में न्यूनाधिक भाव से उपस्थित है परन्तु उस के निज लोक में चढ़ कर पहुँचे बिना उस का साक्षात दर्शन या मेला नहीं हो सकता, इस आशय में वाचक ज्ञानियों का ऐसा कथन कि चढ़ना चलना कुछ नहीं है मालिक एक रस सब जगह मौजूद है भूल है—रा० स्वा०

४०—जैसे पेड़ की जड़ को सींचने से उसकी डालियाँ और पत्ते सब तृप्त हो जाते हैं ऐसे ही एक परम पुरुष की अद्वितीय (इकली) भक्ति से सब देवी देवता संतुष्ट हो जाते हैं—महानिर्वाण तंत्र

४१—कथा है कि एक दिन गुरु नानक मक्का की मस्-जिद की ओर पाँव फैलाये ज़मीन पर लेटे थे जिस पर एक मुजाविर ग़ुस्से से बोला कि "तू बड़ा काफ़िर है कि ख़ुदा के घर की तरफ़ पाँव किये पड़ा है"। गुरु नानक ने

दीनता से जवाब दिया "तो आप ही कोई ऐसी दिशा बता दीजिये जहाँ मालिक न हो"—ना० जी०

१५—मालिक का दर्शन

४२—बाचक ज्ञानी कहते हैं कि मालिक अलख है उस का दर्शन किसी को नहीं मिल सकता सो उन की भूल है, संसारी बासना से हृदय की शुद्धता और सच्ची लगन की ज़रूरत है फिर उस के साक्षात दर्शन मिलने में छिन भर की देर नहीं लगती, अनेक परदों में एक भारी परदा विद्या बुद्धि का है जिस से आदमी संसय-आत्मक हो जाता है। कथा है कि एक अनपढ़ भोला भक्त मालिक के दर्शन की चाह में दिन रात बावला रहता था और जो साधू मिलता उस से यही माँगता। किसी चोर ने यह हाल सुन कर उसे अच्छा शिकार समझा और साधू का भेष धर कर उस से कहा कि हम तुझे आज ही दर्शन करा देंगे तू अपना माल असबाब बेच कर हमारे साथ जंगल में चल। वह भोला भक्त तुरत अपने माल को औने पौने दाम पर बेच कर रुपये की थैली लिये चोर के साथ हो लिया। जब बस्ती से बाहर होकर दोनों एक कुए पर पहुँचे चोर ने उससे कहा कि अपनी मायिक पूँजी को किनारे रखकर इस कुए में झाँक तो तुझे मालिक के दर्शन होंगे। जब वह कुए में झाँकने लगा तो चोर ने एक धक्का दिया कि वह कुए में गिर पड़ा। गिरते ही उस को साक्षात दर्शन मालिक के हुए। परन्तु ईश्वर से चोर का अनर्थ न देखा गया और सवार का भेष धर कर उस को पकड़ा और कुए पर लाकर भक्त से सब हाल कह कर कुए से उस को निकालना चाहा।

भक्त जो दर्शन के रस में मगन था बोला कि मुझे न छेड़ो जहाँ का तहाँ रहने दो और वह चोर तो मेरा गुरू है जिसने मुझे दर्शन कराये उसे छोड़ दो। यह चमत्कार देख कर चोर भी उस दिन से भगवत भक्त हो गया॥

१६—मालिक का बचन

४३—मालिक कहता है कि जो मुझ से मिलने को एक क़दम बढ़ेगा उससे मिलने को मैं दो क़दम बढ़ूँगा और यह कि जिस को साँस ही का भरोसा है वह साँस निकलने पर मर जाता है पर जिसको मुझ पर भरोसा है वह कभी नहीं मरता—पा० भा०

४४—जो सब चीज़ों में मुझ को और सब चीज़ें मुझ में देखता है उसे न मैं कभी छोड़ता हूँ और न वह मुझे—गीता

४५—कथा है कि जिस वक्त, शैतान मालिक के दरबार से निकाला गया तो उस ने झुँझला कर क़सम खाई कि जब तक आदमी जीता रहेगा मैं उस के अंदर धँसा रहूँगा जिस पर मालिक ने आज्ञा की कि मैं भी प्रन करता हूँ कि जीव के मरते दम तक अँग संग रह कर उस की रक्षा करता रहूँगा॥

४६—जिन का जीवन-आधार मैं नहीं वह मर हैं और जिन का जीवन-आधार मैं हूँ वह अमर हैं—ईसा

१७—उपदेश

४७—जो मालिक के बच्चे बनना चाहते हो तो बच्चों के गुन गहो और अपने परम पिता की उँगली को कभी न छोड़ो—रा० स्वा०

४८—अगर गिरो तो अपने कुकर्मों को दोष दो अगर ऊँचे चढ़ो तो मालिक का गुन गाओ—रा० स्वा०

४९—जो अपने को प्यार करता है उसे चाहिये कि सदा अपनी निरख परख सावधानता के साथ करता रहे—ध०प०

५०—यह जो तुम संसारी वस्तुओं को देख कर लुभा रहे हो वह खोखली सीप के सामन हैं। तुम्हारे घट में जो अथाह समुद्र लहरा और पुकार रहा है उस में डुबकी लगाओ तो अनमोल मोती पाओ—

शब्द सा हीरा पटक हाथ से, मुट्ठी भरी कंकर से—कबीर

५१—जो पूजा मालिक की बन आवे उस पर अपने मन को न फुलाओ, जो दीन दुखिया की सहायता बन पड़े उसे मुँह से न निकालो—मनु०

५२—दूसरे के धर्म के लिये चाहे वह कैसा ही बड़ा हो अपने धर्म में न चूको—ध० प०

५३—मनुष्यों के साथ मित्र भाव और पशुओं के साथ दया भाव वरतो क्योंकि यदि उन में विष भी भरा है तो उसकी उत्पत्ति तो एक ही दयालु कर्त्ता के अमी भंडार से किसी प्रयोजन के हेतु हुई है, इस लिये मौज के आसरे उन

को सुख पहुँचाने का जतन करो। जो आदमी थोड़ा समय भी अपने जीवन का इस तरह बितावे तो उसका काम बन जावे
—मा० आ०

५४—दुष्ट और नीच के संग भी जो तुम को दुख देता है भलाई करो क्योँकि सच्चा आनंद दूसरोँ को सुखी करने मेँ है

भलयन से भलया करन, यह जग का ब्योहार।
बुरयन से भलया करन, यह बिरले संसार॥
—कबीर

५५—सज्जन अपने दुख से नहीँ घबराता और दूसरोँ को सुखी देख कर मगन होता है पर दुर्जन अपने दुख से व्याकुल हो जाता है और दूसरोँ को सुखी देख कर दूना दुख मानता है॥

५६—जीभ से बुरी बात न कहो, कान से बुरी बात न सुनो, आँख से बुरी चीज़ न देखो, पाँव से बुरी जगह न जाओ, हाथ से बुरी चीज़ न छुओ, और दिल से मालिक के सिवाय सब निकाल दो तो तुम से बढ़कर महात्मा कोई नहीँ॥

१८—मन

५७—मन का रूप कछुए की पीठ या कुब्बेदार शीशे (convex lens) की तरह है जिस मेँ से होकर सुरत या आत्मा की किरन बाहर ठेका लेती है यही ठेके का बिन्दु "अहं" है अर्थात् उस बिन्दु पर जो प्रकाश सुरत ने किया उसे मन समझता है कि मेरा ही है, सो यह अहं बुद्धि जब ही दूर होगी जब मन पर रगड़ा पड़ते पड़ते वह पिचक कर कुब्बेदार की जगह खोखला या गहिरा (concave) हो

जाय तब वह आत्मा की किरन का विन्दु बाहर के दबले अंतर में बनेगा और अहं बुद्धि का नाश हो जायगा।
—रा० स्वा०

५८—मीराबाई की कहन है कि जिस ने मन रूपी देव को बस में किया वही महादेव है। कबीर साहिब ने फ़र्माया है—

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवे ठौर॥

५९—मुहम्मद समाक एक महात्मा सारी उमर क्वारे रहे। किसी ने उन से प्रश्न किया कि आप व्याह क्यों नहीं कर लेते बोले कि एक भूत तो मेरा मन है दूसरा मेरी स्त्री का होगा तो दो भूतों की सम्हाल का मुझ में बल नहीं है
—छाँ० ब० म०

६०—बंदगी बिना मन के संग दिये निष्फल है
—मुहम्मद

६१—मन पाँच प्रकार के होते हैं—(१) मुरदार मन जैसे नास्तिकों का, (२) रोगी मन जैसे पापियों का (३) अचेत मन जैसे पेटभरों का, (४) औंधा मन जैसे कड़ा ब्याज खाने वालों का (५) चंगा मन जैसे सज्जनों का—पा० भा०

६२—मन के पाँच प्रधान बिकारों में "अहंकार" की निकासी सब से ऊँचे स्थान से हुई जहाँ काल पुरुष का आपा ठना। फिर आपा ठानने पर अपना अलग राज रजने

की कामना उत्पन्न हुई और वही "काम" की जड़ हुई। कामना के विस्तार करने में जहाँ रोक टोक पैदा हुई वहाँ "क्रोध" उपजा और जब मनोर्थ प्राप्त हो गया तो उस का "मोह" उत्पन्न हुआ और उस के सदा बने रहने की इच्छा का रूप "लोभ" हुआ। इस रीत से "अहंकार" की जड़ सब से ऊँची और "लोभ" की सब से नीची है—रा० स्वा०

९३—आदमी को चाहिये कि अपना आप मित्र बने (अर्थात् मन वैरी को मीत बनावे) बाहरी मित्र की खोज में न भटके—जै० सू०

१९—निरख परख

९४—जब तक कोई कड़ाई और वेएतवारी के साथ अपनी निरख परख न करता रहेगा वह अपने मन की धूर्तताओं को कभी न समझ सकेगा। जो तुम से कोई काम परोपकार या धर्म का भी बन पड़े तो अपनी नीयत की जाँच करो कि किस हेतु वह काम किया। जो आदमी इस तरह अपने मन की चालों पर कड़ी रखवाली करेगा उस का मन भारी से भारी विजय और कीर्त्ति की दशा में भो न फूलने पावेगा। इस बात को सदा याद रक्खो कि तुम्हारे सब से बड़े वैरी पंचदूत (काम क्रोध लोभ मोह अहंकार) सदा तुम्हारे अंग संग लगे हैं इस लिये उन की घातों से बचो, दूसरों की ओर अवगुन दृष्टि को छोड़ कर अपने अवगुनों को निहारते रहो, और जो औरों के दोष दस बार छिमा करो तो अपने एक बार—की० स०

९५—अपने मन की निरख परख करते रहने से आदमी इस बात की जाँच आप कर सकता है कि उस का मन रोगी

है या चंगा यानी मन की तरंगें भलाई की उठती हैं या बुराई की। जिस किसी का मन मालिक की बंदगी या अच्छे काम में चंचल रहे और उसे ज़ोर देकर लगाना पड़े तो यह भी निशान मन के रोगी होने का है। मन की कसरें को देखने के लिये पूरे गुरू या सच्चे मित्र की संगत बड़ी उपकारी है और निन्दकों से भी जिन की दोष-दृष्टि होती है इस जाँच में सहायता मिलती है—की० स०

२०—अहं बुद्धि, मान

६६—संसार में मनुष्य अहं बुद्धि के कारन अनेक दुख सहता है। लक्ष्मी चंचल और उस का सुख छिन-भंगी है, लाभ के संग हानि छाया की तरह लगी है। जब कि सार भेद जान लिया कि जीवात्मा स्वामी की अंश है तो इस मृग-तृष्ना (सराब) के पीछे क्यों दौड़ते और खपते हो—भर्म को छोड़ो ज्ञान को गहो और भगवत के मार्ग में पैठो—शंकर०

६७—कबीर जी ने कहा है—

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥

६८—"मान" और "नाम" से विरुद्धता है बिना "मान" को उलटे "नाम" नहीं मिलता। मालिक ने फ़र्माया है कि मैं और किसी भेट से ऐसा प्रसन्न नहीं होता हूँ जैसा "दीनता" से जो मेरे भंडार में नहीं है। इस का अर्थ यह है कि संसार के और पदार्थ बढ़ से बढ़कर यदि कोई पेश करें तो वह तो उसी पूरन धनी के भंडार से बख़्शे हुए हैं

उन की मालिक को क्या क़द्र हो सकती है परंतु "दीनता" उस के पास नहीं है क्योंकि वह तो परम स्वतंत्र सर्वोपर और ग़नी है वह किस का आश्रित है जिस के सामने दीनता करे—रा० स्वा०

६६—जिस ने अहंकार क्रोध कपट और लालच को जीता वही सच्चा शूर है—जै० सू०

७०—सब धर्मों का सार यह है कि अहंकार, अकड़, मान मानी, अप्रतीत, टेढ़ाई, अपनी स्तुति, दूसरे की बुराई, चुग़ली, लालच, वेहोशी, क्रोध, विरोध और ईर्षा का त्याग किया जाय—व० सं०

७१—हर एक को चाहिये कि जैसा दूसरे को उपदेश करता है वैसा पहले अपने को बना ले क्योंकि जिस ने अपने मन और इन्द्रियों को वस में कर लिया वह दूसरों को भी बस में कर सकता है, कठिन काम अपने आपे को जीतना है।

आदमी आप अपना राजा है, दुष्ट को अपना ही जाया और पाला आपा ऐसा कुचल डालता है जैसे हीरा पत्थर को।

आपा ही बुराई करता है, आपाही दुख भोगाता है, आपाही बुराई से बचाता है, आपा ही शुद्धि कराता है—ध० प०

७२—मान को अपने मन से निकालने का उपाय यह है कि जीव सोचे कि उस की बिसात ही क्या है और बिना मालिक की दया के अपने पुरुषार्थ से क्या कर सकता है,

मनुष्य तो केवल एक औज़ार कर्त्ता के हाथ में है। गुसाईं तुलसीदास जी ने कहा है—

सुनो भरत भावी प्रबल, बिलखि कही मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस बिधिहाथ॥

७३—शिबली सूफ़ी बिचरते हुए अपने गुरू के सतसंग में गये। कई सतसंगियों ने उन की अनुपम भक्ति की सराहना की इस पर गुरू जी बोले कि तुम लोग भूल में हो ऐसा कुकर्मी और भगवतद्रोही संसार में नहीं है इस को मेरे सतसंग से तुरत निकाल दो। चेलों ने ऐसा ही किया। शिबली के निकल जाने पर गुरू ने कहा कि तुम लोग इस भोले भक्त की प्रशंसा करके उस का नाश किया चाहते थे तुम्हारी तारीफ़ उस के हक़ में तलवार थी जो तुमने उस पर खींची थी अगर ज़रा भी उस का असर होने पाता तो वह अहंकारी बन कर पतित हो जाता। उस की रक्षा के लिये मैंने उस की निन्दा और निरादर से ढाल का काम लिया और उस का ख़ून न होने दिया॥

७४—कोई सच्चा जिज्ञासू एक पूरे गुरू के सामने गया और प्रार्थना की कि महाराज मुझे ऐसी जुगत बताइये कि भगवंत का साक्षात दर्शन हो। आप ने आज्ञा की कि बरस भर उस दालान के एक कोने में बैठ कर निरंतर भजन बंदगी से अपने मन को रगड़ डालो। उस ने एक बरस तक वहाँ बैठ कर रात दिन भजन किया, बरस पूरा होने के दिन जब वह भक्त भजन में मगन था गुरू महाराज ने घर की भंगन से कहा कि उसके पास जाकर झाड़ दे और ख़ूब

गद् उड़ा। भंगन ने ऐसा ही किया जिस पर वह भोला भक्त क्रोध में डंडा लेकर उठा और भंगन से कहने लगा कि तू ने मेरा आनन्द बिगाड़ दिया। थोड़ी देर पीछे वह गुरू के पास जाकर हाथ जोड़ कर बोला कि महाराज एक बरस तो बीत गया पर मालिक के दर्शन न हुए तो आप ने जवाब दिया कि अब तक तो तेरा मन विष भरे साँप की तरह उछलता और "काटता" है क्या यही लच्छन दर्शन पाने के हैं जा एक बरस और मन को मार कर भजन कर। भक्त लज्जित हुआ और फिर एक बरस तक लग कर अभ्यास किया। जब दूसरा बरस पूरा होने पर आया तो गुरू महाराज ने भंगन को कह दिया कि इस बार उस के भजन के समय ख़ूब रौला कर और उस के ऊपर कुछ कूड़ा भी डाल दे, इस बार भक्त ने इस विघ्न पर उतना क्रोध तो न किया परंतु कसमसा कर भंगन से कहा कि दुष्ट यह तेरा कैसा सुभाव पड़ गया है कि भक्तों का कुछ ख़याल नहीं रखती और सम्हाल कर झाड़ू नहीं देती। फिर जब उन्हों ने जाकर गुरू जी से प्रार्थना दर्शन की की तो जवाब दिया कि अब तक तेरे मन रूपी साँप का सिर नहीं कुचला है "काटता" तो नहीं पर "फुफकार" मारता है जा फिर एक बरस भजन कर। बेचारा अपनी कसर पर लजा कर फिर भजन में जा लगा। जब तीसरा बरस पूरा होने पर आया गुरूजी ने भंगन से कहा कि आज तो तू भजन में उस को बालटी में विष्टा घोल कर ख़ूब नहला दे। जब उसने ऐसा किया भक्त जो भजन के आनन्द में मगन था सच्ची दीनता से भंगन के पाँव पर गिर पड़ा और बोला कि तेरे ही द्वारा मेरी गढ़त हुई जिस के प्रताप से आज़ मेरी मनोकामना सिद्ध हुई।

७५—एक बार शाह इबराहीम फ़क़ीर बिचरते हुए किसी नगर में पहुँचे वहाँ एक भक्त नाई रहता था जो हर शुक्रवार की कमाई को मालिक की राह में ख़ैरात कर देता था। उस का नेम था कि जो जब आवे उसी क्रम से उस की हजामत बनाता। शाह इबराहीम भी वहाँ पहुँचे और इस ख़याल से कि इतना भारी इनाम उस हज्जाम ने कभी न पाया होगा इस लिये चकरा जायगा और मेरी हजामत पहले बना देगा उस के सामने एक थैली अशरफ़ियों की झनकार के साथ रख दी। उस भक्त ने शाह इबराहीम की ओर आँख उठा कर देखा भी नहीं और अशरफ़ी की थैली को उसी टोकरे में डाल दिया जहाँ और लोगों की भेंट डाली जाती थी और जब तक शाह इबराहीम की बारी नहीं आई उन को हजामत के लिये ठहरना पड़ा। ऐसा त्याग उस वृद्ध भक्त का देखकर इबराहीम ने अपने मन को अहंकार लाने के लिये धिक्कार दिया और प्रन किया कि मन को कड़ा दंड दूँगा तब चेतेगा। इस मतलब से एक रास्ते में जिधर से भीड़ फ़ौज के सिपाहियों की शाह इबराहीम के उस नगर में आने का हाल सुनकर उन के दर्शन को जा रही थी खड़े हुए। लोगों ने उनसे पूछा तुम जानते हो कि हज़रत शाह इबराहीम कहाँ ठहरे हैं। आप बोले कि उस दुष्ट अहंकारी का नाम मेरे सामने न लो वह तो ऐसा पतित है जिस के देखने से प्रायश्चित सिर पर चढ़े। यह सुन कर लोगों ने क्रोध में भर कर बहुत गालियाँ दीं और ख़ूब मारा यहाँ तक कि बदन घायल हो गया; तब आप बड़े मगन होकर वहाँ से चल दिये और जी में कहने लगे कि हे दुष्ट मन तू इसी योग्य था अब तो बादशाहत का घमंड छोड़कर दीन बन॥

७६—जिस ने अपने मन और इन्द्रियों को बस में नहीं किया उस की उपासना ऐसी समझनी चाहिये जैसे हाथी का नहाना कि इधर तो नहाया उधर शरीर पर धूल डाल कर फिर ज्यों का त्यों हो गया—हित०

७७—किसी जिज्ञासू ने एक महात्मा से कहा कि महात्माओं में मान बड़ाई नहीं होती पर आप तो उससे ख़ाली नहीं मालूम होते, जवाब दिया कि मैं मानी नहीं हूँ पर मेरा मालिक मान बड़ाई का रूप है, सो जब मैं ने अपनी मान बड़ाई दिल से निकाली तो उस ख़ाली जगह में उस की मान बड़ाई आ समाई। अपनी ज़ात पर मान करना बुरा है पर मालिक की ज़ात पर मान करना निर्मल भक्ति है—त० औ०

२१—दीनता

७८—मालिक को दीनता पसंद है इसी लिये उस को दीन-दयाल कहते हैं। उस का बचन है कि जो कोई मुझ से मिलना चाहे वह मेरी भेट को ऐसा पदार्थ लावे जो मेरे पास नहीं है वह पदार्थ दीनता है क्योंकि मालिक तो सर्वसमरथ और पूरन धनी है, कौन सी अनमोल वस्तु है जो उसके भंडार में न हो सिवाय दीनता के जो ऐसा पदार्थ है कि उसी के पास होता है जो दूसरे का आश्रित है—

रा० स्वा०

७९—दीन लखै मुख सभन को, दीनहिं लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता, नरहु देवता होय ॥ १ ॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥ २ ॥

आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥ ३॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै, ऊंचा प्यासा जाय॥ ४॥
—कबीर

८४—भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास की, काटै न तरवार॥ १॥
सहजो चन्दा दूज का, दरस करै सब कोय।
नन्हे से दिन दिन बढ़ें, अधिको चाँदन होय॥ २॥
—सहजो

८५—सच्चे साधू अपने मन को पीस कर चाले हुए मैदे के समान कर देते हैं जिस में मान की किरकिरी नहीं रह जाती—कथा है कि उसमान हैरी को किसी ने खाने को बुलाया पर जब पहुचे तो परीक्षा करने को उन को घर में घुसने न दिया तब वह लौट चले इस पर उसने उन्हें फिर पुकारा वह पलट आये लेकिन इस ने फिर भी उन को दुरदुरा दिया इसी तरह कई बार उनका निरादर किया पर महात्मा जी का मन मैला न हुआ। यह चमत्कार देख कर वह उन के चरनों पर गिरा और बोला कि यह सुभाव सच्चे महापुरुष का है। महात्मा जी बोले कि यह सुभाव तो कुत्ते का होता है कि उसे कितनी ही बार दुरदुरा दो फिर जब बुलाओ दौड़ा आता है तो मुझ में क्या विशेषता हुई!

—पा० भा०

८६—भक्त वह है जो अपने मन को मिट्टी अर्थात् धरती के तुल्य बना ले जिस में लोग बिष्टा (खाद) डालते हैं और वह अन्न देती है—जग०

२२—कामना, इच्छा, चाह

८७—कहा है जैसे हवा चलने से पानी में चन्द्रमा की छाया चंचल रहती है उसी तरह कामनाओं के झकझोर से जीवों का चित्त डाँवाँडोल रहता है, इसलिये आदमी को चाहिये कि संसार की माया छोड़ कर अपने कल्यान का विचार और साध संग करे कि उस से धर्म और सुख दोनों मिलते हैं—हित०

८८—जिस ने इच्छा का त्याग किया उस को घर छोड़ने की क्या आवश्यकता है और जो कि इच्छा का बँधुआ है उस को बन में रहने से क्या लाभ हो सकता है, सच्चा त्यागी जहाँ रहे वही बन और वही भजन-कंदरा है—म० भा०

८९—चाह जाति की चमारी है क्योंकि चाम से उस की यारी है, फिर जहाँ उस का अपवित्र रूप मौजूद है वहाँ मालिक का परम पवित्र रूप कैसे विराजे—

चमरिया चाह बसी घट माँह।
गुरू अब कैसे धारैं पाँय ॥ —रा० स्वा०

९०—न जीने की इच्छा रक्खो न मरने की बरन हर बात के लिये ऐसे तैयार रहो जैसे नौकर मालिक के हुकम के लिये—मनु०

९१—भक्ति मार्ग में चाह और अचाह दोनों का निषेध है केवल प्रेम की महिमा है—रा० स्वा०

२३—बासना

६२—भोगोँ से आदमी अपने को बचा सकता है पर उन की बासना मरने पर भी नहीँ मिटती जब तक कि भगवंत का साक्षात् दर्शन न मिले—गीता

तेरे मन मेँ जो नहिँ बासना, तन संग भोग बिलास की।
तो कौन तुझ को खींचता, कि तू जग की चोरसरा मेँ आ॥

६३—एक विद्वान का कहन है कि बासना भोगोँ की जो शरीर छूटने पर भी जीव के संग रहती है उस का कष्ट घोर नर्क की सासना से बढ़कर है। इस बासना का बेग सूक्ष्म शरीर मेँ और बढ़ जाता है क्योँकि उसे स्थूल इन्द्रियोँ के परिमानुओँ को हिलाना नहीँ पड़ता परंतु बिना स्थूल इन्द्रियोँ के वह पूरी भी नहीँ हो सकती जिस से जीव को महा कष्ट होता है॥

२४—बुरी चिन्तवन से बचने की युक्ति

६४—बुरे ख़्यालोँ और चिन्तवन से पीछा छुड़ाने के लिये यह ग्यारह जुगतियाँ बहुत उपकारी हैँ—(१) मालिक से प्रार्थना करना, (२) आलस से बचना, (३) कुसंग से दूर रहना; (४) बुरी किताबेँ क़िस्सा कहानी की न पढ़ना; (५) नाच तमाशा चेटक नाटक मेँ न जाना, (६) अपनी निरख परख करते रहना, (७) इन्द्रियोँ को बुरे विषयोँ की ओर झुकने से रोकना, (८) जब बुरे चिन्तवन उठेँ तो उन को चित्त से नोच कर फैँक देना, (९) एकान्त मेँ मन और इन्द्रियोँ की बिशेप रखवाली करना, (१०) परमार्थी शिक्षाओँ को सदा

याद रखना, (११) मौत और नर्कों के कष्ट की याद दिलाकर मन को डराते रहना—ई० था०

२५—बेठिकाने गुनावन

९५—मालिक के भजन में अक्सर बेठिकाने और भरमते हुए गुनावन भी उठते हैं जो मन को अंतर में नहीं जुड़ने देते और भजन को बेरस कर देते हैं। यह गुनावन दूसरे प्रकार के हैं जिन में बुराई का अंग उतना नहीं होता बरन आलस और मूर्खता प्रधान होते हैं। मुख्य कारन इन गुनावनों का यह है कि आदमी दुनियाँ के काम और सोच में सना हुआ पूजा में जा बैठता है और उसे दूसरे संसारी कामों की तरह निबटा डालना चाहता है। यह बात अनुचित है—देखो जब दुनियाँ के किसी बड़े हाकिम या बादशाह के सामने जाते हो तो कितने अदब और डर के साथ अपने बाहरी पहिरावे और सूरत को ठीक कर लेते हो, फिर अंतर के स्वामी के सामने जाने के लिये जो सब बादशाहों का बादशाह है कितने अदब और थोड़ी देर के लिये चित्त को साफ़ और सुथरा कर लेने की ज़रूरत है। इसलिये उचित है कि मालिक की अंतर सेवा में बैठने के पहले मन को भय और भाव के घाट पर लाओ और इस अभिप्राय से महात्माओं के शब्द चितावनी बिनय बिरह प्रेम आदि के जो प्यारे लगते हों उन का मन ही मन में पाठ करना बहुत उपकारी है। जैसे अच्छे गाने बजाने के लिये पहले बाजे का तार और सुर मिला लेते हैं उसी तरह मालिक के गुनानुवाद के लिये भी मन का तार कसने और सुर मिलाने की ज़रूरत है और उस को धिक्कार देकर संसारी चिन्तवन से रोकना चाहिये कि जब तू

रात दिन संसार के असार कामों में लिपटा रहता है तब तो मालिक के चिन्तवन को तनिक नहीं धँसने देता फिर थोड़ी देर के लिये मालिक की बंदगी में संसारी गुनावन उठाकर क्यों अपने को नर्क का भागी बनाता है–इस जुगत से गुनावन अवश्य दब जायँगे —रा० स्वा०

२६—मालिक के दरबार के लिये शृंगार

६६—ऐसा कहा है कि मालिक के दरबार में दख़ल पाने के लिये शुद्धी और सिंगार की ज़रूरत है पर वह शुद्धी तीर्थों में डुबकी लगाने या तन को मल मल कर धोने से नहीं प्राप्त होती और न वह सिंगार सुथरे पाट पटम्बर और आभूषन पहनने से। मन के विकारी अंगों अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह अहंकार को दूर करके उन की जगह शील छिमा संतोष दीनता और गुरुभक्ति को बसाना यह सच्ची शुद्धता और सिंगार है जिस से मालिक रीझता है—रा० स्वा०

२७--सब रस सुरत की धार में

६७—यह संसार जो तुम्हें हरा भरा रसीला और प्रकाशमान दीख पड़ता है तुम्हारी ही तवज्जह की चेतन्य धार के उस में समाने से है क्योंकि सब तरावट रस और प्रकाश इस चेतन्य धार ही में है, जड़ पदार्थ तो रूखे फीके होते हैं; इस का दृष्टांत ऐसा है जैसे कुत्ता सूखी हड्डी चिचोरता है जिस में कोई रस नहीं लेकिन वह लोहू जो उस के दाँतों से निकलता है उसके स्वाद को हड्डी का स्वाद समझता है। देखो जब तुम किसी रोग सोग के कष्ट में हो

और तुम्हारी तवज्जह की धार संसारी पदार्थों से हटी हुई हो तो वह कैसे रूखे सूखे और अँधेरे नज़र आते हैं
—रा० स्वा०

९८—दुर्जन को संसार सुहावना लगता है सज्जन को डरावना—ध० प०

२८--परमार्थ की कुंजी

९९—करनी और शरन परमार्थ की दो कुंजियाँ हैं—गीता

२९--पहले भय और आशा फिर प्रेम

१००—हंस रूपी जिज्ञासा के दो पंख "भय" और "आशा" हैं जिन के बल से वह आकाश में चढ़ता है परन्तु ब्राह्मांड के परे भय का पंख झड़ कर उस की जगह प्रेम का पंख उगता है तब निर्मल चेतन्य देश या दयाल देश में गम होती है। इसका तात्पर्य यह है कि पहले तो जिज्ञासू की चाल नर्कों और चौरासी का डर और मालिक की दया की आशा चलावैगी; फिर आगे बढ़कर यह भय छूट जायगा यदि कोई भय रहेगा तो माया के जाल में फँसने से सतगुरु की अप्रसन्नता का, और वह भी माया मंडल के परे पहुँच कर जाता रहेगा—आगे प्रेम और दया से चाल चलेगी। ब्राह्मांड तक मन रूपी तुरंग के चलाने को "आशा" लगाम है और रास्ते में किसी स्थान में लुभाकर न अटकने के लिये "भय" कोड़ा है जैसा कि संतों ने फ़र्माया है—

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहे सो ऊबरे, गाफिल खाई मार॥

इस के आगे तो प्रेम ही प्रेम रह जायगा जिस की खैंच शक्ति बेहिसाब है और जिस से इस की चाल बिजली की नाईं हो जायगी—कबीर साहिब ने फ़र्माया है—

आया बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका से तिनका मिला, तिनका तिनके पास॥

इस के प्रमान में कथा है कि एक महात्मा सतसंग में ताड़ मार के बचन कह रहे थे और तनिक सी चूक में मालिक की दया छिन जाने का भय दिला रहे थे जिसको सुन कर सब सतसंगी काँपने और रोने लगे तब उन महात्मा को आकाश-बानी हुई कि मेरे जीवों को इतना डराना और मेरी अपार दया से निराश करना अनुचित है॥

१०१—किसी ने एक महात्मा से पूछा कि परमार्थ के लिये भय और आशा दोनों में कौन अधिक उपकारी है बोले कि अगर दोनों हों तो सोना और सुगन्ध है नहीं तो भय तो अवश्य होना चाहिये क्योंकि इस से भजन बंदगी रगड़ कर की जाती है केवल आशा बेपरवाह कर देती है। लेकिन दोनों की एक हद है जैसा कि लुक़मान हकीम ने अपने बेटे को उपदेश किया था कि मालिक से वहाँ तक डर कि उसकी दया की आशा टूट न जाय और वहाँ तक आशा रख कि उस से निडर न हो जाय; और यह भी कहा कि पहले उमंग को मन में बसा और फिर डर को जिस में उमंग डर को सम्हाले। लेकिन बिना प्रेम के प्रगट हुए काम पूरा न बनेगा॥

३०—भय

१०२—संसार में जिस से आदमी डरता है उस से दूर भागता है पर मालिक से डरनेवाला उसीकी ओर दौड़ता है॥

१०३—एक महात्मा के चोला छोड़ने की तैयारी थी बेटे ने तबियत का हाल पूछा आप बोले कि बड़ा टेढ़ा समय है मालिक से प्रार्थना कर कि मरते दम तक मेरी नीयत को बिगड़ने न दे; काल खड़ा घिरा रहा है कि बेदाग़ चले जावगे यह हमारी राजनीत के विरुद्ध है, मैं अपनी नीयत के फिरने के डर से काँप रहा हूँ क्योंकि अभी एक साँस बाक़ी है—त० औ०

१०४—किसी भक्त ने अपनी कथा लिखी है कि मैं एक बार एक पहाड़ पर गया और वहाँ हज़ारों रोगियों को बैठा पाया सबब पूछा तो उन लोगों ने कहा कि यहाँ गुफा में एक साधू रहता है बरस में केवल एक दिन निकलता है और रोगियों पर फूँक डालता है तो सब अच्छे हो जाते हैं आज उसके निकलने का दिन है। यह सुन कर मैं भी ठहर गया। थोड़ी देर पीछे गुफा से एक साधू निकला जिस के हाड़ हाड़ नज़र आते थे लेकिन चिहरे से तेज टपकता था उस ने पहले आकाश की ओर देखा और फिर सब रोगियों पर फूँक डाली सब अच्छे हो गये। तब मैं ने दौड़ कर उस का पल्ला पकड़ा और कहा कि आप ने सब के शरीर के रोगों को अच्छा किया मेरे मन के रोग को भी दूर कीजिये। साधू घबरा कर बोला कि हे भक्त जल्दी से मुझे छोड़ दे इसलिये कि मालिक देख रहा है कि तू उस के सिवाय दूसरे का पल्ला पकड़े है जो पतिव्रत धर्म के विरुद्ध है ऐसा न हो कि तुझे मेरे और मुझे तेरे सपुर्द करदे, यह कहता हुआ साधू पल्ला छुड़ा कर गुफा में घुस गया—त० औ०

१०५—किसी बादशाह को एक ऐसा भयानक रोग हुआ जिस के लिये यूनान के सारे हकीमोँ ने राय दी कि सिवाय ऐसे आदमी के पित्ते के जिस में फ़लाने फ़लाने गुन होँ और कोई दवा अच्छा नहीँ कर सकती। ऐसे मनुष्य की खोज में हज़ारोँ आदमी दौड़े और अंत को एक ग़रीब किसान का लड़का लाये जिसे हकीमोँ ने पसंद किया। लड़के के मा बाप बहुत सा धन पाकर उस के मारे जाने पर राज़ी हो गये, क़ाज़ी ने भी फ़तवा दे दिया कि बादशाह की सलामती के लिये एक प्रजा की जान लेना जाइज़ है। जब जल्लाद ने बादशाह के सामने लड़के के मारने को खड्ग खींचा तो बालक आकाश की ओर देख कर मुसकराया। बादशाह ने उस से पूछा यह कौन अवसर हँसने का है। लड़का बोला कि बेटे का भरोसा मा बाप पर होता है, और फ़रियाद क़ाज़ी के सामने की जाती है और अन्तिम आस न्याव और दया की बादशाह से होती है सो मा बाप ने संसार के तुच्छ लाभ के लिये अपने बालक का बध स्वीकार कर लिया, क़ाज़ी ने एक निरपराधी के मारे जाने की व्यावस्था दे दी और बादशाह जो न्याव और दया का भंडार और प्रजा का रक्षक है उस ने अपने थोड़े रहे जीवन के लिये एक बालक के अधिक दिन तक के जीवन का हतन उचित समझा तो कर्तार की इस अचरजी लीला पर मुझे हँसी आई; सिवाय उस समरथ के अब किस की ओर निहारूँ। बादशाह पर उस लड़के के इस बचन का ऐसा गहरा असर हुआ कि यह कह कर कि मुझे ऐसे अनर्थ का अपराधी होने से मरना पसंद है बालक को प्यार करके और बहुत सा इनाम देके छोड़ दिया और कथा है कि दो ही चार दिन में मालिक की दया से बिना किसी दवा के चंगा हो गया—त० औ०

३१—बिरह

१०६—बिरह की आग मैं जलने वाले के आँसू इस तरह बेइख़्तियार बहते हैं जैसे जलती हुई गीली लकड़ी की दूसरी ओर से फेन निकलता है।

बिरहन ओदी लाकड़ी, सपचै और धुँधुआय।
छूट परौं या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय॥

—कबीर

१०७—कोमल और दीन हृदय जो बिरह से बिकल है वही मालिक का बासा है—ईसा

३२—प्रेम, प्रीत

१०८—प्रेम आकर्षन या खैंच शक्ति का नाम है जिस से सब रचना ठहरी हुई है और मालिक आप प्रेम सरूप है। बिना प्रेम के आदमी ऐसा है जैसे बिना प्रान के शरीर। जिस घट मैं मालिक का प्रेम आता है सिवाय प्रीतम के सब को राख कर डालता है—

प्रेम जब आया सभौं को रद किया।
एक प्रीतम रह गया और बाक़ी सब जल भुन गया॥

कबीर साहिब ने फ़रमाया है—

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान॥

१०९—नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद॥

—भागवत

[श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि न मैं आकाश में रहता हूं न पाताल में न स्वर्ग में न बैकुंठ में बरन जो साध और भक्त जन मेरे प्रेमी हैं उनके हृदय में मेरा निवास है]

११०—संसार में प्रेम किस को कहते हैं ? ? अपने से बढ़ कर किसी को चाहना—तो जो अपने से बढ़ कर मालिक को चाहता है उस को तन मन धन अपने प्रीतम पर वार देने में क्या सोच बिचार होगा और उस की मरज़ी में कैसे राज़ी न होगा, खुलासा यह कि उसका आपा मिट गया फिर क्या करने को रहा॥

११२—कुल शास्त्रों और जप तप के ग्रन्थों को मैं ने छान डाला पर बिरले में रत्न पाया, रात दिन नहाया पर मन का मैल न धुला। सब मनुष्यों में वही श्रेष्ठ है जिस ने सतसंग के प्रताप से अपने आपे को मिटा दिया। जिस ने अपने को नीच जाना वह सब से ऊँचा है। जिसका मन बिकार से रहित हुआ उस के सब धब्बे ईश्वर आप छुड़ा देता है और नया जन्म कर देता है। सब स्थानों में उत्तम उस हृदय का स्थान है जहाँ मालिक आ बसा है—अष्टपाद

११९—श्री कृश्नचंद्र का वाक्य है कि मेरा प्यारा भक्त वह है जो किसी से द्रोह नहीं रखता, जो सारी रचना का मित्र है, जो दयावान है, जो मानी और स्वार्थी नहीं जिसको दुख सुख एक समान हैं कोई कष्ट दे तो अपने मन को मैला नहीं करता, जो संतोषी है, जो सदा मालिक का चिंतवन करता है, जिस ने मन और इन्द्रियों का दमन किया है, जो दृढ़ संकल्प है, जो न आप लोक से डरता और न कोइ उससे डरता है, जो सहनशील और हान लाभ से बेपरवाह है, जो किसी से आस नहीं करता, जो निर्पक्ष और निर्मल है, जो न्यायवर्ती और सावधान-चित्त है जिस को शत्रु मित्र

और मान अपमान और प्रशंसा निंदा सम लगते हैं, जो किसी बात के फल की चिंता नहीं करता जो कम बोलता है, जिसका मन थिर है और जो कुछ होता है उस में मालिक की मौज निहारता है—गीता

११३—भक्ति में तीन परदे हैं, इन तीनों को मन से हटाना चाहिये तब परमार्थ और भजन का पूरा रस आवेगा—पहला यह है कि जो संसार और स्वर्ग का राज और भोग उसको दिये जावें तो वह उसको पाकर मगन न होवे क्योंकि जो मगन हो गया तो लालची है और लोभी को दर्शन नहीं मिलेगा। दूसरा परदा यह है कि जो संसार और स्वर्ग का राज और भोग उसको प्राप्त है और वह उससे छीन लिया जावे तो दुखी न होवे और सोच न करे क्योंकि जो दुख माना तो झूठा है और झूठा परमार्थ के योग्य नहीं है। तीसरा परदा यह है कि चाहे कितनी ही कोई स्तुति और आदर करे उस पर मन न फूले और ग़ाफ़िल न हो जावे क्योंकि जो ऐसा है तो ओछा पात्र है और अभी ऊँचे देश और गहरे रस के योग्य नहीं है—छाँ० ब० म०

३३—प्रतीत

११४—विना प्रतीत के संसार का कोई काम नहीं सरता फिर परमार्थ का क्योंकर चल सकता है। मालिक की प्रतीत दृढ़ होने में दो कठिनाई हैं एक यह कि मालिक को कभी देखा नहीं तो देखे हुए पदार्थ के बराबर उसकी प्रतीत कैसे हो सकती है दूसरे यह कि मन की प्रकृति मायिक होने से माया सम्बन्धी बस्तुओं को आदमी सहज में पकड़ सकता पर निर्मायिक बस्तु को ग्रहन करना इस की प्रकृति और

सुभाव दोनोँ के विरुद्ध है। ऐसी दशा मेँ मालिक की प्रतीत जो निपट निर्मायिक है मन मेँ बसाना अत्यंत कठिन काम है इसी लिये वह नहीँ ठहरने पाती और बार बार संसारी पदार्थों की ओर मन झोका खाता है, सो इस का जतन केवल एक है अर्थात् नित्य सतसंग और मालिक का सुमिरन करना

—रा० स्वा०

११५—प्रतीत के बिना उमंग नहीँ जागती इस लिये कुल मालिक की प्रतीत आदमी को सदा चित्त म बसाये रहना और उस की महक से सब वस्तुओँ को सुगंधित रखना चाहिये—

जिस नहिँ कोई तिसहि तू, जिस तू तिस सब होय।
दरगह तेरी साइयाँ, मेटि न सक्कै कोय॥

—कबीर

११६—एक विद्वान भक्त एक अनपढ़ साधू के यहाँ गया जब खाने का समय आया साधू ने नोन रोटी जो कुटी मेँ थी उन के सामने रक्खी। उन्होँ ने खाना शुरू किया कि इतने में एक मँगता ने हाँक मारी। साधू ने अपने मिहमान के आगे का खाना उठाकर उस को दे दिया इस पर मिहमान बोला कि साधूजी अगर आप पढ़े लिखे होते तो ऐसा न करते कि अपने मिहमान को भूखा रख कर उस के आगे का कुल खाना भिखमंगे को दे देते, यह अतिथि-सतकार के विरुद्ध है, मँगता को थोड़ा सा दे देना काफ़ी होता। इतने ही मेँ साधूजी का एक प्रेमी थाल में अच्छे अच्छे भोजन लेकर पहुँचा साधू ने अपने मिहमान के साथ बैठ कर भोग लगाया और हाथ धोने

के पीछे बोले कि आप अवश्य सच्चे भक्त हैं परंतु जो प्रीत के साथ प्रतीत भी होती तो ऐसा न समझते कि मँगता को खाना देने से मालिक आप को भूखा रक्खेगा—त० औ०

११७—एक कुलीन महात्मा ने बड़े बड़े धनियों की परवाह न कर के अपनी कन्या को एक निर्धन भक्त से ब्याह दिया। जब लड़की बिदा होकर पति के घर पहुँची तो देखा कि आधा टुकड़ा रोटी का और थोड़ा सा पानी एक गिलास में रक्खा है। उस ने पति से पूछा कि यह क्यों धरा है तो बोला कि कल्ह मैं आधा टुकड़ा रोटी का और आधा पानी गिलास का काम में लाया बाक़ी आधा आज के लिये रख छोड़ा है। यह सुन कर स्त्री ने अपने पिता के घर जाना चाहा। पति बोला कि मैं पहले ही समझता था कि बड़े घर की लड़की का निर्धन के साथ निबाह नहीं हो सकता। स्त्री बोली कि ऐसा नहीं है बरन अपने बाप से शिकायत करने जाती हूं कि उन्हों ने मुझे बचन दिया था कि मेरा ब्याह किसी प्रतीतवान भक्त के साथ करेंगे सो इसी का नाम प्रतीत है कि मालिक पर इतना भरोसा भी न हो कि दूसरे दिन खाने को देगा और आप भोजन संचय करने की ज़रूरत समझे!
—त० औ०

११८—एक और कथा है कि कोई महात्मा हर बात पर जो उन से कही जाती थी जवाब दिया करते थे कि "मालिक की मौज से बहुत अच्छा हुआ"। एक आदमी जो आप के सतसंग में आया करता था हर अवसर पर चाहे दुख का हो चाहे सुख का आप की यह सीख सुन कर अचरज करता था। कुछ दिन पीछे उस का इकलौता बेटा मर गया और वह

महात्मा जी के पास आकर अपना दुख रोया। आप ने अपनी वही बँधी हुई सीख सुनाई कि "मालिक की मौज से बहुत अच्छा हुआ"। ऐसे अवसर पर हम-दर्दी के बदले यह बचन सुन कर वह आदमी क्रोध के मारे पागल सा हो गया और इरादा कर लिया कि यह बड़ा दुष्ट और निर्दई है इस का सिर क़ाट लूँगा। यह इरादा करके जंगल में जहाँ वह महात्मा सवेरे दिशा को जाया करते थे शस्त्र लिये छिप रहा। जब महात्मा जी वहाँ पहुँचे तो एक भारी काँटा उन के तलवे में चुभ कर आरपार हो गया और इतना लोहू बहा कि आप मूरछा खाकर गिर पड़े। यह दशा दूके से देख कर वह आदमी घबरा गया और पास आकर हाल पूछा आप ने वही बँधा हुआ जवाब दिया कि "मालिक की मौज से बहुत अच्छा हुआ" क्योंकि मेरे कर्म में इसी समय सिर कटना लिखा था सो मालिक ने अपनी अपार दया से शूलों का शूल करके मेरे कर्म का ऋन चुका दिया। यह सुन कर वह आदमी काँपने लगा और महात्मा जी के चरनों पर गिर कर उन का अडिग्ग भक्त बन गया॥

११६—मालिक जिस ने पेट रचा है खाने को ज़रूर देगा इस निश्चय को तो "प्रतीत" कहते हैं लेकिन इस से आगे बढ़ना यानी मालिक ने जो हाथ पाँव दिये हैं उन को बाँध कर बैठना और ऐसी हठ करना कि मालिक आप खाना पहुँचावेगा मालिक को चाकर बनाना और बेअदबी है। कथा है कि कोई साधू एक कंदरा में जा बैठा और प्रन किया कि जब तक मालिक भोजन न देगा हम उपास करेंगे सात दिन इसी टेक में भूखा रहा जब कलेजा मुह में आने लगा आकाश

बानी हुई कि सुन मूर्ख जैसे तू ने टेक बाँधी है कि मैं अपने हाथ से दूँ तो तू खायगा वैसे ही मेरी भी टेक है कि जब तक तू बस्ती में जाकर न रहेगा और जो भोजन मैं अपने भक्तों के द्वारा भेजूँ उसे ग्रहन न करेगा तुझे भूखा रक्खूँगा, तू चाहता है कि मेरी गुप्त लीला को प्रगट कर दे सो नहीं होने का। साधू भगवत अप्रसन्नता से थर्रा उठा उसी दम बस्ती में चला आया वहाँ पहुँचते ही कितनी ही जगह से भोजन आया जिसे उस ने ग्रहन किया—की० स०

३४—शीतलता

१२०—एक भक्त का इकलौता प्यारा बेटा मर गया, जिस पर उन्होंने मालिक को धन्यवाद दिया और हर्ष किया। लोगों ने अचरज से पूछा कि यह क्या बात है तो जवाब दिया कि अगर मालिक ने कोई अनमोल वस्तु एक बँधे हुए समय के लिये मेरे सपुर्द की थी उस के वापस लेने पर रोना चाहिये या शुकर करना? और हर्ष का भेद यह है कि मैं ने अवधि पूरी होने पर उस अमानत को अधिक काल तक बनाये रहने की प्रार्थना नहीं की जिससे मालिक प्रसन्न हुआ और इस असह बियोग की ज्वाला को अपनी दया की धार से शीतल कर दिया इस से मैं हर्षित हूँ॥

[इस दृष्टांत को याद रखने से, कष्ट और शोक की दशा में बहुत कुछ शान्ति प्राप्त हो सकती है]

३५—सच्चा सेवक

१२१—कथा है कि हज़रत इबराहीम ने बलख़ की बादशाहत के ज़माने में एक ग़ुलाम मोल लिया उससे पूछा कि

तेरा क्या नाम है बोला कि जिस नाम से आप पुकारें फिर पूछा कि क्या खायगा तो कहा कि जो आप खिलावें फिर पूछा कि क्या पहिनेगा जवाब दिया कि जो आप पहिनावें फिर पूछा कि क्या काम करेगा तो कहा कि जो आप करावें, फिर पूछा कि क्या चाहता है बोला कि जो आप की मरज़ी हो, ग़ुलाम को अपनी चाह से क्या मतलब। यह सुनकर इब-राहीम ने अपने मन को धिक्कार दिया कि तू भी किसी मालिक का ग़ुलाम है उस की मरज़ी कहाँ तक निबाही। त० औ०

१२३—एक राजा ने किसी लड़के को नदी के किनारे मिट्टी से खेलते देख कर पूछा कि तू मिट्टी से क्यों खेलता है जवाब दिया कि मिट्टी ही से पैदा हुआ हूँ और फिर मिट्टी ही में मिल जाना है इस लिये उसी से खेल रहा हूँ। राजा ने ख़ुश होकर पूछा कि तू मेरे साथ रहेगा लड़का बोला कि हाँ इस शर्त पर कि जब मैं सोऊँ तू जाग कर मेरी रक्षा कर मुझ को खिला और पहिना और आप न खा और न पहिन और जहाँ जाऊँ मेरे साथ रह। राजा ने कहा कि यह क्योंकर हो सकता है, हाँ यह कर सकता हूँ कि जो मैं खाऊँ सो तुझे भी खिलाऊँ जो मैं पहिनूं सो तुझे भी पहिनाऊँ, जहाँ मैं जाऊँ वहाँ तुझे भी रक्खूं। लड़के ने जवाब दिया कि इसी बित्ते पर मुझे साथ रखना चाहते हो मैं ऐसे का सेवक हूँ जो आप नहीं खाता पर मुझे खिलाता है, आप नहीं पहिनता पर मुझे पहि-नाता है, जहाँ मैं जाता हूँ साथ रहता है, सोते जागते मेरी रक्षा करता है फिर ऐसे मालिक को छोड़ कर दूसरे की सेवा में क्यों जाऊँ। यह सीख राजा के मन में धस गई और राज पाट छोड़ कर भक्ति के रंग में रँग गया॥

१६—शरण

१२३—बलिहार होना क्या है? अपना बल हार कर सच्चा दीन आधीन और अंतर से मालिक का आश्रित हो जाना, इसी का नाम पूरी शरन है—रा० स्वा०

१७—दया-क्षमा

१२४—दया ज्ञान की भुजा है और क्रोध मूर्खता की भुजा॥

१२५—धन्य हैं वह जन जो दया-शील हैं क्योंकि वही परम पिता की निज दया के भागी हैं—ईसा

१२६—जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप॥
—कबीर

१२७—क्रोध को जीतने का शस्त्र छिमा है, बुराई का भलाई, सूमता का उदारता और झूठ का सच—म० भा०

१२८—जो कोई थोड़ा बहुत रोगी बना रहता है, उस पर मालिक की दया है, क्योंकि इसके सबब से वह बहुत से पापों से बच जाता है। श्रीकृष्ण का वचन है कि जो मेरे भक्त हैं उन को मैं तीन दात देता हूँ-निर्धनता, रोग और निरादर-इसी जुगत से मैं अपने भक्त की रक्षा करता हूँ—छाँ० ब० म०

१२९—जिस पर मालिक दया करता है उसका जी अक्सर दुखी और उदास रहता है और जिस पर उस की

दया दृष्टि नहीं है उसको संसार का सामान और भोग बिलास अधिक देता है—डॉ० य० म०

१३०—कोई महात्मा नदी में नहा रहे थे। एक विच्छू को पानी में बहता देख कर उसे बचाने को हाथ मे उठा लिया। बिच्छू ने डंक मारा पर उन्हों ने उसे सहज सुभाव किनारे पर रख दिया। लहर के झोंके से वह फिर बह चला जिस पर उन्होंने उसे दुबारा बचाया और डंक खाया, जब तीसरी बार बिच्छू बहा और वही दया भाव बरतने लगे तो एक आदमी बोला कि महाराज क्या ऐसी दया ऐसे दुखदाई जीव के साथ ठीक है? जवाब दिया कि इसमें अनुचित क्या है मैं अपने सुभाव का धर्म उस के साथ बरत रहा हूँ और वह अपने सुभाव का धर्म मेरे साथ॥

१३१—किसी दुष्ट ने एक महात्मा को भगली और कपटी कहा महात्मा बोले कि तीस बरस से मुझे कोई न पहचान सका था आप की चतुराई को सराहता हूँ कि देखते ही पहचान लिया। महात्मा जी का एक सेवक जो पास था क्रोध में आया पर उन्होंने डाँटा कि उस ने झूठ क्या कहा— "काया" का "पट" यही "कपट" है तो तनधारी मनुष्य कैसे निष्कपट हो सकता है॥

१३२—किसी ने एक भक्त को गाली दी वह सुन कर चुप हो रहा। लोगों ने पूछा कि आप ने उस को दंड क्यों न दिया, बोले कि इस से बढ़कर क्या दंड होगा कि उसने दुर्बचन कहने का प्रायश्चित्त अपने सिर पर चढ़ाया—पलटू

१३३—एक महात्मा किसी एकान्त स्थान में भजन कर रहे थे कि एक नास्तिक जो उन से भारी द्रोह रखता था अचांचक तलवार खींचे पीछे आ खड़ा हुआ और बोला कि हम तुम्हारा सिर काटते हैं बताओ कौन बचाने वाला है। भक्त बोला "सर्व-समरथ परम पुरुष"। इस शब्द से वह ऐसा दहल कर काँप उठा कि हाथ से तलवार छूट पड़ी। महात्मा उस नंगी तलवार को उठा कर डराने के लिये नास्तिक के गले के पास लाये और पूछा कि अब तू बता कि तेरा बचाने वाला कौन है। नास्तिक बोला "कोई नहीं"। भक्त ने कहा "तो छिमा और दया मुझ से सीख ले"। यह कह कर तलवार हाथ से डाल दी। नास्तिक चरनों पर गिर पड़ा और उस दिन से उन का भक्त बन गया॥

१३४—एक महात्मा रास्ते में जा रहे थे कोई आदमी उन्हें ज़ोर से घूँसा मार कर भाग गया जब उसे उनकी महिमा मालूम हुई तब उस ने आकर अपनी भूल की छिमा चाही महात्मा बोले कि इस का कर्त्ता मैं तुझे नहीं समझता और जिसे कर्त्ता समझता हूँ उस से भूल नहीं हो सकती तू जा मुझे न तुझ से रंज है और न असली करनेवाले से जिस का कोई काम बिना दया और मसलहत के नहीं होता॥

१३५—एक भक्त का कपड़ा कोई चुरा ले गया, दूसरे दिन उन्होंने उसे हाट में बेचते देखा दूकानदार कह रहा था कि कोई पहचान दे कि यह तेरा ही माल है तो मैं मोल ले लूँ इस पर भक्त बोला कि मैं जानता हूँ तब दूकानदार ने उस को दाम दे दिया। आप के एक सतसंगी ने पूछा कि आप ने ऐसा क्यों किया तो जवाब दिया कि उस ने

मुहताजी के सबब से चोरी की थी और मुहताज को देना हर एक का धर्म है। इस बरताव का चोर पर ऐसा असर हुआ कि उसी दिन उन के आश्रम पर आकर चरनों पर गिरा और सच्चा सतसंगी बन गया॥

१३६—एक स्त्री कुकर्म करते पकड़ी गई। लोग उसे रोती सिसकती हज़रत ईसा के सामने लाये और कहा कि हज़रत मूसा को नीत के अनुसार ऐसी पापिन की जान पत्थरों से मार कर ले लेनी चाहिये। ईसा बोले ठीक है लेकिन तुम लोगों में से जिस ने कोई पाप न किया हो वही पहले पत्थर मारे नहीं तो हत्या का पाप उस के सिर पर चढ़ेगा। यह सुनकर सब लज्जित होकर चुप हो गये। तब ईसा ने दया-दृष्टि डाल कर उस स्त्री से कहा अपनी सुधार कर। स्त्री ईसा के चरनों पर गिर पड़ी और उस दिन से सच्ची भक्त बन गई—त० औ०

३८---विचार

१३७—किसी महात्मा ने कहा है कि एक बरस के भजन से एक घड़ी का विचार बढ़ कर है। विचार का अभिप्राय मालिक की महिमा और परमार्थ की ज़रूरत चित्त में बसाने और दृढ़ाने का है—इस की अनेक जुगतियाँ हैं जैसे मालिक की कारीगरी और क़ुदरत का विचार जो कि भूमी और आकाशी (तारा मंडल आदि) रचना पर ध्यान देने से प्रगट होती है, अपने पिछले पापों के दंड का विचार, अपने मन की बासनाओं का बिचार, संसार के छिन्न-भंगी होने और परमार्थ की महिमा का बिचार जिस से सदा का आनन्द मिल

सकता है मालिक की अपार दया और रक्षा का बिचार, इत्यादि ॥

१३८—सोने के पहले तीन बातों का लेखा मन से लो—(१) दिन भर कोई कुकर्म किया या नहीं, (२) कोई सुकर्म बन आना या नहीं, (३) कोई बात जो करनी चाहती थी बिसारी या नहीं—अफ़॰

३८—संतोष

१३९—संतोष का लच्छन यह है कि जो कुछ मोटा झोठा मालिक दे और जिस हालत में रक्खे उसी में शुकरगुज़ार और राज़ी रहे चित्त की वृत्ति न बदले और माया के विशेष भोगों और सुख की चाह न उठावे। पशुओं को तो ऐसे बरताव की समर्थता ही नहीं बरन देवलोक में भी इस की आवश्यकता न होने के कारन यह संपदा प्राप्त नहीं है। इसी लिये कहा है कि यह अनमोल वस्तु मनुष्य जोनि ही का अधिकार है जो देवताओं को भी नसीब नहीं—पा॰ भा॰

१४०—जो कुछ मिले उस में संतोष करना और दूसरों की ईर्षा न करनी यही शांति के कोष की कुंजी है—पा॰भा॰

१४१—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥

—कबीर

१४२—शाह इबराहीम ने एक त्यागी से पूछा कि साधू का क्या लच्छन है, जवाब दिया कि अगर मिले तो खाले न मिले तो संतोष करे, फ़रमाया कि यह लच्छन तो कुत्ते का है, पूछा कि फिर आपही बतलावेँ तो बोले कि सच्चा साधू वह है कि अगर मिले तो मालिक की राह मेँ लुटा दे और न मिले तो मालिक को धन्यवाद दे—ख़ारिस्तान

४०---सुखी

१४३—हर्ष के साथ शोक और भय ऐसे लगे हैँ जैसे प्रकाश के संग छाया। सच्चा सुखी वही है जिस को दोनोँ एक समान हैँ—ध० प०

४१---सुकर्म-भलाई-पुन्य कर्म

१४४—हर एक का उपकार करना अपना फ़र्ज़ समझो पलटे मेँ अगर वह बुराई करे तो अपने मन को मैला न करो—तुम को अपना फ़र्ज़ अदा करते रहना चाहिये अगर दूसरा दुर्मत से अपने फ़र्ज़ मेँ चूके तो उसकी समझ पर क्रोध करने के बदले तरस खाव—ध० प०

१४५—सुकर्म या पुन्य कर्म या भलाई लोक परलोक दोनोँ के लिये अति उत्तम है और उस से परलोक का सुख अनंत काल को प्राप्त होता है परन्तु आवा-गवन सदा के लिये नहीँ छूट सकता वह तो जब ही छुटेगा जब आदमी निःकर्म हो जाय॥

४२---कुकर्म-बुराई-पाप कर्म

१४६—कुकर्म करते समय मीठे और सुखदाई लगते हैं और कर्म-फल भोगते समय दुखदाई--ध० प०

१४७--भोग करने से भोग की इच्छा नहीं बुझती वरन ऐसी भड़कती हैं जैसे घी पड़ने से आग--मनु०

१४८--एक भक्त ने सपने में एक अति सुन्दर पुरुष को देख कर पूछा कि तू कौन है और कहाँ रहता है उसने कहा कि मेरा नाम "संयम" है और भक्तों के हृदय में मेरा स्थान है--फिर एक कुचिल कुरूप आदमी को देखा और उस से वही प्रश्न किया वह बोला मेरा नाम "पाप" है और भोगियों के हृदय में मेरा निवास है—पा० भा०

१४९—जिस कुकर्म से आदमी के जी में सच्चा पछतावा और मालिक का भय आवे वह उस भजन बंदगी से बढ़कर है जिस से मन में अहंकार आवे ॥

४३---मानसी पाप

१५०--जो पर-स्त्री को कुदृष्टि से चितवता है वह अपने सिर पर विभिचार का मानसी पाप चढ़ाता है—ईसा

१५१—चार मानसी पाप दीर्घ रोग हैं—(१) मालिक और परमार्थ की ओर से अपरतीत, (२) मालिक की दया से निरास होना, (३) अपने कुकर्मों और कसरों पर दोष दृष्टि न रखनी, (४) अपने के निर्दोष और सुकर्मी जानकर निडर होना

इस वचन से प्रगट होता है कि कुकर्म में रुचि और सुकर्म का अहंकार एक ही श्रेनी में रक्खे गये हैं बरन कुकर्मी का तो इलाज भी है क्योंकि यदि वह किसी समय सच्चे जी से झुरे और पछताय तो मालिक की दया का भंडार उस के लिये खुल जाता है पर सुकर्म का अहंकार असाध्य रोग है वह बड़ी कठिनता से जाता है क्योंकि ऐसा मनुष्य अपने को पूरा गिनता है और कोई कसर अपने में नहीं देखता जिस पर झुरे पछताय इस लिये मालिक की दया से विमुख रहता है॥

४४—झुरना पछताना-तौबा

१५२-महात्मा अबूबकर का वचन है कि तौबा [पछतावा] छः बातों से पूरा होता है (१) पिछले पापों पर लज्जित होना, (२) फिर पाप न करने का प्रन करना, (३) जो सेवा मालिक की छूट गई हो उसे पूरा करना, (४) जो हानि किसी की हुई हो उसका घाटा चुकाना, (५) लोहू और चरबी जो हराम के खाने से शरीर में बढ़ी हो उसे घुलाना, (६) शरीर ने जैसा पाप में सुख उठाया है वैसाही मालिक की सेवा में उसे दुख देना॥

१५३—नेम के साथ भजन कर लेने में उतना फ़ायदा नहीं जितना अपनी कसरों पर झुरने पछताने में जिस से मन का मान टूटता है। कथा है कि एक भक्त का नेम था कि तीन बजे तड़के से उठ कर मालिक का सुमिरन ध्यान करता था एक बार वह बेसुध होकर सो गया तो सपने में देखा कि शैतान ने आकर उसे यह कह कर जगा दिया कि भजन का समय है चेत कर। इस को बड़ा अचरज हुआ कि शैतान का काम तो भगवत् भजन में बिघ्न डालने का है न कि उस में सहायता

करने का, गुरू से प्रश्न किया तो उन्होंने जवाब दिया कि शैतान तुझ से बड़ी घात कर गया क्योंकि जो तू उस दिन सोता रह जाता और भजन न करता तो कई दिन तक ऐसा झुरता पछताता जिस से मामूली तौर पर भजन कर लेने के मुक़ाबले में सौगुना फ़ायदा होता सो शैतान ने वह भारी लाभ होने न दिया ॥

४५—एकान्त

१५४—यदि मन एकाग्र और गुनावनों की भीड़ से रहित हो तो बाहर भीड़-भाड़ में रहने में भी एकान्त है और यदि मन में संसारी बासना भरी हो तो बाहर का एकान्त निष्फल है – रा० स्वा०

१५५—यह कभी न समझो कि तुम अकेले हो—मालिक तुम्हारे अंग संग है और तुम्हारी भली बुरी करतूत सब देखता है—मनु०

१५६—एक साधू से किसी ने पूछा कि तू अकेला क्यों बैठा है । जवाब दिया कि पहले तो अकेला न था; मालिक ध्यान में साथ था लेकिन अब तू ने आकर अकेला कर दिया ॥

४६—धन

१५७—संसार जितना चंचल लक्ष्मी के पीछे पचता है उस से सवें हिस्से परिश्रम में परमार्थ का अचल धन मिल सकता है—पा० भा०

१५८—जो धन होते अपने भाइयों की तंगी पर तरस नहीं खाता और उनकी सहायता नहीं करता उस के हृदय में मालिक का प्रेम कैसे धस सकता है—ईसा

१५६—महात्मा हसन बसरी कहते हैं कि मरने के समय संसारियों को तीन पछतावे होते हैं—(१) जिस माया को बड़े जतन से बटोरा था उस को भली प्रकार भोग न लिया, (२) मनोर्थ सब पूरे न हुए, (३) परलोक के रास्ते का कुछ तोशा न बना लिया ॥

४७—निराशता

१६०—परमार्थ में सब से घातक वस्तु निराशता है जो पाला की तरह परमार्थ के अंकुर को जला देती है। कथा है कि जब हज़रत ईसा पैदा हुए तो शैतान को बड़ी खलबली पड़ी कि वह जीवों का उद्धार करके उस के राज को उजाड़ देंगे। सलाह के लिये सभा अपने मंत्रियों की बिठाई। सब मंत्रियों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुसार जतन बतलाये, किसी ने कहा कि मैं कनक के लालच से परमार्थियों को परमार्थ से डिगा दूँगा, किसी ने कामिनी के जाल में फँसाने का मन्त्र सुनाया, किसी ने मान बड़ाई को सराहा, इसी तरह सब ने अपना अपना राग गाया लेकिन शैतान ने इन में से किसी हथियार को कारगर न समझा। सब के पीछे एक बूढ़े मन्त्री ने जो दूर बैठा था कहा कि मैं परमार्थियों को "निराशता" के शस्त्र से मारलूँगा अर्थात् उनके दिल में निराशता पैदा करके उनको परमार्थ से हटा दूँगा। यह

सुनकर शैतान ख़ुशी से उछल पड़ा और बोला कि सब से ज़ियादा कारगर यही हथियार होगा ॥

—

१६१—सब से बढ़ कर औषध दुख की मालिक की मौज के आधीन हो जाना है ; जतंन अवश्य करो पर उस का फल मालिक पर छोड़ो तो कभी दुखी और निरास न होगे—कबीर

—

१६२—मालिक की दया की धारा पहले प्रगट हुई और फिर उसी से सृष्टि हुई तो किसी हालत में निरास होना भारी भूल और कृतघ्नता है—रा० स्वा०

—

४८—सच्चा ज्ञान

१६३—बिना आत्म ज्ञान हुए तत्व ज्ञान नहीं आ सकता तो जो आदमी अपने आपे का ख़बर नहीं रखता वह मालिक से कब ख़बरदार हो सकता है। कितने ही लोग इस भ्रम में पड़कर कि हमारी गति ऊँचे लोक तक हो गई है बड़ा धोखा खाते हैं और अहंकारी हो जाते हैं, उन को चाहिये कि अपनी परख इस कसौटी से करें कि अपने अंतर का भेद उन्होंने क्या जाना अगर नहीं जाना तो भारी भूल में पड़े हैं—की० स०

—

१६४—जिस ने बुरा सुभाव नहीं छोड़ा है, जिसने अपनी इन्द्रियों को नहीं रोका है, जिसका मन चंचल बना है किंचित थिर नहीं हुआ, वह केवल पढ़ने लिखने से आत्मज्ञान को नहीं पा सकता—कठोपनिषद

—

१६५—दोस्त और दुश्मन दोनों में मालिक आप बैठा है फिर दोस्त की दोस्ती पर और दुश्मन की दुश्मनी पर ख़याल

नहीं करना चाहिये दोनों में मालिक प्रेरक है, पर यह दृष्टि सब की नहीं हो सकती है, जो अपने में मालिक का दर्शन करते हैं उन की ऐसी दृष्टि है—रा० स्वा०

१६६—घट घट में वही साईं रमता।
कटुक वचन मत बोल रे तो को पीव मिलैंगे॥
—कबीर

१६७—जो विपत में दुखी न हो, जिसे सुख की कामना न हो, जो द्रोह मोह भय और क्रोध से उपराम हो, जिस के चित्त की लाग कहीं न हो, और जिस ने अपने मन और इन्द्रियों को सर्वांग बाहरी पदार्थों से इस तरह समेट लिया हो जैसे कछुआ अपने अंग को अंतर में सिकोड़ लेता है वही सच्चा ज्ञानी है—गीता

१६८—दास में स्वामी और स्वामी में दास है तो जिस ने अपने को नहीं पहचाना वह स्वामी को कैसे पहचान सकता है—दूलन०

४९--मौज

१६९—पुरुषार्थ और प्रारब्ध अथवा तदबीर और तक़दीर (जिसका बयान पृष्ठ ३६ में है) दोनों से बढ़कर परमार्थी भगवतेच्छा को मानते हैं जिसे संतों ने "मौज" के नाम से कहा है—इसके प्रताप से कर्मों का वेग भी घट जाता है और तदबीर भी सीधी पड़ती है। सिवाय इसके बढ़ का लाभ मौज पर विश्वास रखने वालों को यह प्राप्त होता है कि

उनका हृदय सदा शीतल बना रहता है, अर्थ न सिद्ध होने की दशा में निरा निरो पुरुषार्थ वालों को तो अपनी तदबीर को दोष देकर तपन और निराशता ब्यापती है और प्रारब्ध के बँधुए अपने भाग को कोस कर झींकते पीटते सबर के घाट पर आते हैं परन्तु मौज पर बिश्वास करने वाले भारी से भारी बिपत में अपना परमार्थी लाभ और मालिक की दया निहार कर मगन रहते हैं—रा० स्वा०

१७०—जो हर काम के करने में मालिक की मौज निहारता है वह निष्कर्म हो गया और वही सच्चा भक्त है
—रा० स्वा०

५०—वैराग

१७१—किसी गृहस्थ को वैराग उपजा और घरबार छोड़ कर बाहर चला उसकी स्त्री भी जो सच्ची भक्त थी (यद्यपि उसका पति उसकी गति को नहीं जानता था) आग्रह करके साथ हुई। नगर से बाहर निकल कर मर्द ने एक अशरफ़ी ज़मीन पर पड़ी देखी और यह सोचकर कि कहीं स्त्री का जी न लुभाय उसे चुपचाप पाँव से मिट्टी में ढक दिया। स्त्री ने पूछा कि क्या है उस ने कहा कि कुछ नहीं फिर उसके आग्रह पर असल बात कह सुनाई जिस पर स्त्री बोली कि क्या इसी का नाम वैराग है जो मन में सोने और मिट्टी का भेद रहा आवे। चलो घर लौट चलो। पुरुष यह सुन कर लज्जित हुआ और स्त्री के चरनों पर गिरा कि तू मेरी गुरू है॥

५१--कपट

१७२-कपट का जैसा संसारी संबन्ध में निपेध है उससे बढ़कर परमार्थ में क्योंकि पहली सूरत में तो कपटी संसार ही को धोखा देता है लेकिन दूसरी सूरत में मालिक को; और दिखावे की भक्ति भी निष्काम भक्ति नहीं बरन मान प्रतिष्ठा की कामना से लोक की भक्ति है सो मालिक के दरबार में क़बूल नहीं होती क्योंकि जैसा वह आप गुप्त रहता है वैसा ही गुप्त भक्त को भी पसंद करता है—रा० स्वा०

५२—निष्काम दान

१७३—धन का फल दान है और दान का फल ईश्वर के निर्धन बच्चों के संतुष्ट होने से ईश्वर की प्रसन्नता—

कबीर हरि के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय॥

१७४—शत्रु को भी प्यार करो और फल की कामना से दान या शुभ कर्म मत करो तब मालिक प्रसन्न होगा—ईसा

१७५—गुप्त दान कुल मालिक की रीत है और उसके बहुत पसंद आता है—रा० स्वा०

५३—सकाम दान

१७६—एक भक्त सपने में नर्क और स्वर्ग देख कर दोनों को बस्ती को अचरज से निरखने लगा तो स्वर्ग में प्रायः ऐसे जीव दिखाई पड़े जो पूर्व जन्म में निर्धन और निर्बल थे और नर्क बिशेष कर ऐसे जीवों से बसा पाया जो पहले धनी या

बड़े अधिकारी थे परंतु इन दोनोँ के मध्य के पाप-शोधक स्थान (एराफ़) मेँ एक बड़े अमीर को जो प्रसिद्ध दानी था मलीन रूप से बैठा देखकर उस से पूछा कि तुम ऐसे भारी दाता होने पर भी यहाँ क्योँ भेजे गये। उसने ठंढी साँस भर कर जवाब दिया कि मैँ ने जो लाखोँ रुपये परोपकार के कामोँ के अर्थ दिये उसके साथ अंतरी चाह लोक बड़ाई और राजा के प्रसन्न करने की लगी हुई थी इस लिये वह परमार्थी हिसाब मेँ बनिज माना गया, गुप्त दान कुल मालिक की प्रसन्नता और दीन दुखियोँ की सहायता के लिये स्वच्छ मनसा से नहीँ किया इससे यह कष्ट भोग रहा हूँ—पा० भा०

१७७—एक महात्मा का बचन है कि जो लोग ऐसी ख़ैरात करते हैँ कि उनके मरने के पीछे दी जावे वह निपट स्वार्थी हैँ क्योँकि इस से यह बात प्रगट होती है कि वह जीते जी अपनी पूँजी मेँ से कुछ ख़र्च नहीँ किया चाहते ॥

५४—संसार असार

१७८—संसार छिन-भंगी है पल भर का भरोसा नहीँ इस लिये जो भलाई करनी हो तुरत कर लो—दादू

१७९—(प्रश्न) सच्ची बस्ती और सच्चा घर कौन है?

(उत्तर) समसान जहाँ जाकर लोग ऐसे बस जाते हैँ कि फिर लौटना नहीँ होता और संसार की चिन्ता से सदा को छूट जाते हैँ॥

१८०—(प्रश्न) सच्ची दीनता और सच्चा बैराग सीखने का कौन स्थान है?

(उत्तर) स्मसान जिस के देखने ही से मान मनी का मर्दन होता है और संसार की असारता दरसती है ॥

१८१—यह लोक सागर के समान है जिसका किनारा परलोक, और सुकृत पार होने के लिये नाव, और चढ़ने वाला जीव बटोही है ॥

१८२—जिस ने इस बात को भली भाँत समझ लिया कि दुख और सुख भवसागर के ज्वार भाटे के समान हैं जिन से कोई जीव बच नहीं सकता उस को अपनी दशा की घट बढ़ में न शोक होता न हर्ष—यो० वा०

१८३—संसार रथ के समान है जिस के दो पहिये पुरुषार्थ और प्रारब्ध हैं—हित०

१८४—किसी धनी ने एक साधू को अपने घर बड़े आदर से ठहराया। दूसरे दिन साधू जी बोले कि सराय में मैं नहीं ठहरता मुझे जाने दो। धनी ने कहा कि यह तो मेरा अपना घर है सराय नहीं। साधू ने पूछा कि तुम्हारे पहले यहाँ कौन रहता था कहा कि मेरे बाप। फिर पूछा कि उस के पहले यहाँ कौन रहता था बोला कि मेरे दादा। इस पर साधू ने कहा कि इसी को तो सराय कहते हैं जहाँ एक जाता और एक आता रहता है ॥

१८५—जो कोई मौत को सदा अपनी दृष्टि के सामने रखता है उस पर भोग बिलास जगत के कुछ असर नहीं करते। कथा है कि एक पूरे महात्मा कहीं बिराजमान थे और सतसंग कराते थे और सतसंगियों के उपकार के हेतु जो कोई

इच्छा भोजन वस्त्र इत्यादि प्रेम से लाता उसे ग्रहन करते थे; उन का एक भोला गृहस्थ चेला था जिस के मन में भर्म उठा सो उस ने एक दिन गुरू से खोल कर पूछा कि महाराज यदि मैं एक दिन स्वादिष्ट भोजन घी चीनी दूध मलाई के खाता हूँ तो काम अंग और अनेक कमनाएँ जाग उठती हैं पर आप पर नित्त भोग विलास करने और पुष्टी का आहार खाने से भी क्यों असर नहीं होता। महात्मा जी बोले कि इस का उत्तर फिर कभी दूंगा। कुछ दिन पीछे जब नियम अनु-सार वह भक्त उन की सेवा में आया तो अपने गुरू को उदास पाया और बड़ी चिन्ता से कारन पूछा उन्होंने ने कहा कि कुछ नहीं फिर उस के आग्रह पर बोले कि आज भजन में मुझ को ऐसा जान पड़ा कि तेरी आयु के केवल तीस दिन बाकी रहे ह इस का मुझ को दुख है। उस ने पूछा कि फिर मुझे क्या आज्ञा होती है। गुरूजी बोले कि तू जल्द घर का प्रबंध करके आठ पहर मेरे पास रह और जो मैं करूँ सो तू भी कर पर-लोक का इंतिज़ाम तेरा मैं कर लूंगा। उस ने ऐसा ही किया और उन की आज्ञा से सब प्रकार के भोग विलास करता रहा और अच्छा भोजन अघा कर खाता रहा। जब तीस दिन बीत गये और वह न मरा तो गुरू से प्रश्न किया कि महाराज यह क्या बात है उन्होंने ने कहा कि पहले तू मेरे सवाल का जवाब दे कि इस तीस दिन में तू ने क्या क्या किया, क्या सुख भोगे और क्या खाया और इस भोग विलास का तुझ पर क्या असर हुआ। वह बोला कि मुझे खबर भी नहीं तब फ़र-माया कि तेरे प्रश्न का उत्तर हो गया अर्थात् जो अपनी मौत को हर दम दृष्टि में रखता है उस पर संसार के भोग कुछ असर नहीं कर सकते॥

५५—मौत का डर

१८६—परंतु मौत का डर दूसरी बात है वह सज्जन और सच्चे भक्त को कदापि नहीं व्यापता क्योंकि उस ने तो काल कर्म का लेखा चुका कर भगवंत की शरन ले ली है फिर उसे किस का डर; सो जैसे पक्के शूर वीर लड़ाई के मैदान में ललकार कर मौत का सामना करते हैं वैसे ही सच्चे भक्त बड़े उमंग से मौत की आस तकते हैं क्योंकि वह भगवंत की झाँकी लेने की खिड़की है। सच्ची बहादुरी क्या है? (१) अपनी इन्द्रियों को बस में रखना या कम से कम उन के वेग में वह न जाना, (२) अपनी जीभ पर रोक रखना, (३) अच्छे काम के करने में दृढ़-संकल्प रहना, (४) मालिक की मौज पर राज़ी रहना चाहे वह मन के मुवाफ़िक़ हो चाहे नामुवाफ़िक़—सहजो

१८७—सज्जन के लिये मरना संसार के झगड़ों और हलचल से सदा को छूटना और शांति को प्राप्त होना है और दुर्जन को घोर कष्ट और अशांति का सामना है—मा० आ०

५६—मोक्ष

१८८—मोक्ष न कर्म धर्म से मिलती न धन और सन्तान से बरन इन सब से निर्बन्ध होने पर—कैवल्योपनिषद्

१८९—मन ही मनुष्य को बन्ध में डालता है और मन ही निर्बन्ध करता है। जिसने अपनी देह और धन धाम में आपा

ठाना वह बँधुआ है, जिस ने इन को मिथ्या समझ लिया वही मोक्ष को प्राप्त हुआ—सर्वोपनिषद

५७—आहार

१६०—भोजन जीव के पोषन और भगवत भजन के लिये रचा गया है न कि जीव भोजन के लिये—सादी

१६१—जिस के भोजन का आशय केवल जीव के निर्बाह का और बचन का आशय सत्य के प्रकाश का है उसका मार्ग लोक परलोक दोनोँ मेँ सीधा और सुगम है—हित०

१६२—एक बार हलका आहार करने वाला महात्मा है, दो बार सम्हल कर खाने वाला बुद्धिमान है, और इससे अधिक बेअटकल खानेवाला मूर्ख और पशु समान है—ध० प०

१६३—एक महात्मा ने कहा है कि अधिक और पुष्ट करने वाला आहार खाने से छः गुनोँ की हानि होती है—(१) भजन का रहस्य, (२) बचनोँ का स्मरन, (३) दया, (४) निरआलसता (५) भोगोँ की प्रबलता होती है, (६) सदा खाने और मल त्याग करने की इच्छा बनी रहती है—और भक्त जन तो केवल प्रानोँ के निर्बाह मात्र भोजन करते हैं॥

१६४—हर एक के यहाँ खाने पीने से बचाव करो सिवाय उन के जो सज्जन हैं क्योँकि दुर्जनोँ के धान्य मेँ बुरा असर होता है। कथा है कि एक साधू जो सच्चा त्यागी था और अपने मन की सदा रखवाली करता था किसी जंगल मेँ जा

रहा था रास्ते में कड़ी प्यास लगी। दूर से एक कुँआ दीख पड़ा जिस पर एक लोटा डोरी रक्खी थी। साधू ने उस से पानी निकाल कर पिया। इसके पीछे उस के मन में यकायक ऐसी उचंग उठी कि यदि इस लोटा डोरी को मैं साथ ले लूँ तो आगे को प्यासा रहने के डर से बच जाऊँ पर तुरत धर्म का कोड़ा सामने आया और उस लोटा डोरी को साँप की तरह फेंक कर वहाँ से भागा। रास्ते में अपने मन को धिक्कार देता और सोच करता था कि उस ने ऐसी बुरी तरंग चोरी की क्यों उठाई। अंत को आगे न बढ़ सका और मुड़ कर पास के एक गाँव में जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि वह कुआ एक भारी चोर ने चोरी की कमाई से बनवाया था, तब उसकी समझ में आया कि उस कुए का पानी पीने से यह बुरा असर पैदा हुआ। ऐसा असर थोड़ा बहुत हर एक पर होता है परन्तु भक्त जन जिन का हृदय बहुत स्वच्छ है उन्हें तुरत लख पड़ता है॥

१६५—व्रत का अभिप्राय यह है कि सादा और सूक्ष्म आहार या कभी कभी उपास करके तबीअत को हलका रख कर विशेष सुमिरन ध्यान मालिक का किया जाय न कि फलहार के नाम से स्वादिष्ट और गिरिष्ट पदार्थ नाक तक खाकर पड़ रहना या दिलबहलाव के लिये खेलों में वक्त खोना॥

५८—जीवन

१६६—मनुष्य का जीवन कर्म का कारन है और कर्म भले या बुरे प्रारब्ध का कारन है, यही नियम हमारे जीवन का है और

यही उद्दिम उस उद्दिम को नियत करता है जो हमें करना पड़ेगा—अ० पु०

[तात्पर्य यह है कि आदमी के जीवन के क्रम ही से कर्म उपजते हैं और कर्म शुभ या अशुभ जैसे बन आवें वैसा ही भला या बुरा प्रारब्ध नियत होता है जिससे अब और आगेके जन्मों में पापड़ बेलने पड़ेंगे—देखो वचन ११७ पृष्ठ ३७]

५९—पुनर्जन्म.

१९७—एक भक्त ने कहा है कि अचरज की बात है कि कितने ही मतों में कर्त्ता और उसके अचूक न्याव को मानते हैं परन्तु पुनर्जन्म को नहीं मानते। पूर्व कर्म ही हाल के चोले का साँचा है नहीं तो कोई जनम से आरोग और सुखी और कोई बचपन से रोगी और दुखी क्यों हो।

६०—मौज गुप्त

१९८—पूरे महात्मा जो कहते और करते हैं उस की मस्लहत जीव तत्काल नहीं लख सकता, समय आने पर उन की मौज से सूझ पड़ती है क्योंकि जो मालिक के चरनों में लवलीन है वह ऐसा ही गुप्त हो जाता है जैसा कि उस का प्रीतम—

कथा है कि एक सच्चा जिज्ञासू किसी महात्मा के सतसंग में नेम से जाया करता था, लेकिन बहुत सी कार्रवाइयाँ उस की समझ में नहीं आती थीं इस लिये हर एक का सबब पूछा करता। एक दिन महात्माजी बोले कि फ़लाना भक्त जो फ़लानी जगह रहता है उस के पास जाव वह तुम्हारे सवालों का जवाब देगा। वह उस भक्त के पास

गया जो उस महात्मा के गुरुमुख चेले थे और अपना हाल कह कर संशयों का जवाब माँगा। भक्त बोला कि छः महीने तक सतसंग करो तब हम जवाब देंगे। जो कि वह सच्चा खोजी था उस ने मंज़ूर किया। कुछ दिन पीछे भक्त ने आज्ञा की कि बाँस, रस्सी, जलाने की लकड़ी और नया कपड़ा मोल लाकर एक कोठरी में रख दो। उस ने सबब पूछा तो कहा कि छः महीने तक सवाल न करने का वादा याद रक्खो। फिर कुछ दिन पीछे हुकम दिया कि हमारे बेटे के ब्याह को तैयारी करना है सो सामान लाना शुरू करो। उस ने यह भी किया। आख़िर को ब्याह एक नास्तिक की कन्या से हुआ। उसी रात को जब वह लड़का अपनी स्त्री के कमरे में सोया तो साँप ने काट लिया और लड़का मर गया। भक्त ने रात ही को मुसकरा कर जिज्ञासू से कहा कि अब जाव, सब सामान रथी कफ़न और मुरदा फूँकने का कोठरी से निकाल लाव और दूसरे सतसंगियों के साथ मुरदे को नदी किनारे ले जाकर जला दो। तब तो यह बेचारा झल्ला उठा और बोला कि महाराज अब मुझ से नहीं रहा जाता आप पहले से जानते थे कि यह लड़का मर जायगा क्योंकि कफ़न और रथी और फूँकने का सामान मँगा कर रख लिया था फिर जान बूझ कर एक भले आदमी की निरअपराध कन्या के साथ उस का ब्याह करके उस बेचारी के सिर पर जन्म भर के लिये विधवा होने का सोग डाल दिया यह क्या अनर्थ है। भक्त बोला कि छः महीने तुम्हारे वादे के कलह पूरे होंगे तब जवाब दूँगा, अभी जो मैं कहता हूँ करते जाव। दूसरे दिन उस को एकान्त में बुला कर समझाया कि उस लड़के को मालिक ने इतने ही काल के लिये मेरे सपुर्द किया था सो

अमानत की वापसी का समय आने पर मैं ने शुकरगुज़ारी के साथ उस को लौटा दिया। रही क़न्या सो वह पूर्व जन्म की संस्कारी है लेकिन अभक्त पिता के घर में रह कर मालिक की भक्ति नहीं कर सकती थी इस लिये मेरे घर में लाकर भक्ति कराने की मौज थी सो पूरी हुई। इसी भाँत से उस के और प्रश्नों का भी सटीक उत्तर दिया जिस से उस के मन में पूरी शांति हुई॥

६१—फुटकर

१९९—उपकार का रूप मालिक है, उपकार करना नर चोले का धर्म है और उपकार लेना पशु का काम॥

२००—सच्चा खोजी वह है कि जब तक आप न खो जाय मालिक को खोजता रहे॥

२०१—किसी भक्त ने एक महात्मा से आशिर्वाद माँगा उन्हों ने कहा कि मालिक तुझे भजन बंदगी में अधिक रुचि दे उस ने कहा कुछ और भी बख़्शिये तो फ़रमाया कि मालिक तेरे भजन बंदगी को तुझ से भी छिपा रक्खे॥

२०२—समुद्र के किनारे टटोलने से तो घोंघी ही मिलेगी मोती की चाह है तो गहरी डुबकी लगाओ—"जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ"॥

२०३—संसारी सुख क्या है? जो पहले मीठा लगे और फिर कड़वा और जो आते हँसावे और जाते रुलावे॥

२०४—अचेत मनुष्य का शरीर कच्ची छत के घर समान है जिसे फोड़ कर कामनाएँ बरसात के पानी की तरह टपकती हैं—सुन्दर

२०५—लोक के चाहनेवाले कूर * हैं, परलोक के चाहने वाले मजूर † हैं, मालिक के चाहनेवाले शूर ‡ हैं॥

२०६—अचेत आदमी के लिये संसार खेल तमाशे की जगह है परंतु विचारवान के लिये लड़ाई का खेत है जहाँ जीवन पर्यंत मन और इन्द्रियों से जूझना पड़ता है—सहजो

२०७—एक महात्मा ने कहा है कि जिस तरह दुर्जन के लिये नर्क की आग असह दुख है उसी तरह नर्क के लिये सज्जन असह दुख है क्योंकि उस की शीतलता से बड़वानल की ज्वाला ठंडी पड़ जाती है।

२०८—किसी ने अपनी स्त्री से कहा कि मैं परदेश को जाता हूँ तेरे लिये कितनी जीविका छोड़ जाऊँ। स्त्री ने कहा कि उतनी जिससे मैं जीती रहूँ। मरद बोला कि जीवन तो मेरे हाथ में नहीं है। स्त्री ने जवाब दिया कि जीविका भी तेरे हाथ में नहीं है॥

२०९—एक बार कोई महात्मा बीमार हुए वैद्यों ने कहा कि परहेज़ कीजिये, आप ने पूछा कि किस चीज़ से परहेज़

---

* कठोर, भगवत से विमुख। † मजदूर। ‡ बहादुर।

करूँ उस चीज़ से जो मेरी रोज़ी नहीं है या उस से जो मेरी रोज़ी है ? जो मेरी रोज़ी नहीं है वह आप ही मुझे न मिलेगी और जो मालिक की भेजी रोज़ी है उस से मैं परहेज़ नहीं कर सकता—त० औ०

२१०—मनुष्य की देह भौसागर पार होने की नाव है, छिमा उस के खेने का डाँड़, सत्य उस के स्थिर रखने के लिये भार, सुकर्म अगम धारा में खींचने को लहासी, और दान व उपकार पाल में भर कर आगे ढकेलने वाली हवा
—म० भा०

२११—गुनों से तीन लोक की रचना हुई और रचना से उपाधि। जो गुनों में पचा वह भर्म में पड़कर कष्ट भोगता है—जै० सू०

२१२—जैसे रेखा-गनित में "सीधी रेखा" दो विन्दुओं के बीच में सब से कम दूरी रखती है ऐसे ही सीधी चाल शान्ति आश्रम के पहुँचने को सब से नगीच और सुगम रास्ता है—आसवल्ड

२१३—किसी राजा ने एक साधू को नंगा बैठा हुआ देखकर पूछा कि क्या चाहते हो। साधू बोला कि मुझे मक्खियाँ तंग करती हैं। राजा ने कहा उन पर मेरा क्या वस है। साधू ने जवाब दिया कि मक्खी सरीखे तुच्छ जीव भी जिस के इख़्तियार में नहीं उस से मैं क्या माँगूँ॥

२१४—जो कर्म धर्म का बँधुआ है वह भँड़ेरिया है—
पलटू

२१५—आदमी को चाहिये कि अपने वर्ग के कल्यान के लिये एक आदमी को छोड़ दे, अपने नगर के लिये वर्ग को अपने देश के लिये नगर को और अपने जीव के कल्यान * के लिये सारे संसार को—हित०

२१६—माया में जो लिप्त हुआ वह उसी में पच मरा। कथा है कि किसी ने सपने में माया को एक अति सुन्दर युवा स्त्री के रूप में देख कर पूछा कि तेरा ब्याह हो गया है. जवाब पाया कि "अनगिनत"। फिर प्रश्न किया कि सब पति कहाँ हैं? माया बोली कि "मेरे पेट में"। इस का अभिप्राय पूछा तो कहा कि जिस ने मुझे जितना अधिक प्यार किया उतने ही अधिक स्वाद से मैं उसे चबा चबा कर खा गई॥

२१७—किसी राजा ने एक भक्त से पूछा कि तुम्हें कभी मैं भी याद आता हूँ जवाब दिया हाँ जब मैं ईश्वर को भूल जाता हूँ—सादी

२१८—हारूँ रशीद बादशाह की एक महात्मा से मुलाक़ात हुई बादशाह ने उनके त्याग और संतोष की सराहना की। महात्मा बोले कि मैं ने तो परलोक के अमर सुख के लिये यहाँ के छिन-भंगी सुखों का त्याग किया है यह कौन प्रशंसा

---

* मोक्ष या उद्धार।

की बात है, सच्चे त्यागी आप हैं कि माया के तुच्छ सुख के लिये परलोक के अनमोल सुख को त्याग कर बैठे हैं।

२१६—एक आदमी किसी महात्मा के निकट जाकर रोने लगा कि मेरे पास एक पैसे की पूँजी नहीं है। महात्माजी बोले कि यदि कोई दस हज़ार रुपया देकर तेरी आँख लेना चाहे तो तू मंज़ूर करेगा उस ने कहा नहीं, फिर उन्हों ने सवाल किया कि पचास हज़ार रुपये के बदले अपना कान नाक आँखसब देगा? जवाब दिया कि नहीं, तब महात्मा ने कहा कि तू बड़ा नाशुकरा है जो अपने को निर्धन बतलाता है जब कि पचास हज़ार के ऊपर की सम्पत तो मालिक ने तुझे यही दे रक्खी है। ऐसे ही रोग, सोग और दूसरे दुःखों में आदमी विचार को काम में लाकर शुकरगुज़ारी के घाट पर आ सकता है और अपने हृदय को तपन को बहुत कुछ घटा सकता है। संतोष लाने के लिये अपने कष्ट को दूसरों के अधिक कष्ट से मुक़ाबला करने की जुगत भी बड़ी उपयोगी है॥

२२०—किसी बादशाह ने एक महात्मा से शिक्षा चाही उन्हों ने बादशाह से पूछा कि अगर तू रेगिस्तान में प्यास के मारे बेचैन हो और तुझे कोई आधे राज के बदले पानी दे तो लेगा या नहीं बादशाह बोला कि ज़रूर लूँगा फिर पूछा कि अगर वह पानी पीकर तेरा पेशाब बंद हो जाय और पेट फूलने की भारी तकलीफ़ पैदा हो और अच्छा करने के लिये कोई हकीम बाक़ी हिस्सा तेरे राज का माँगे तो क्या करेगा बादशाह ने कहा कि वह आधा राज भी दे दूंगा महात्माजी

बोले कि ऐसे राज पर कभी घमंड न करना जो एक घूँट बिकारी पानी पर और फिर शरीर से उस का विकार निकालने के लिये बिक जाय ॥

२२१—किसी अमीर ने हज़रत इबराहीम के सामने एक थैली अशरफ़ी की भेट रक्खी आप बोले कि मैं मँगता से कुछ नहीं लेता उसने कहा कि मैं तो धनी हूँ मँगता नहीं आप ने फ़रमाया कि तेरे पास जितना धन है उस से अधिक की तुझे चाह है या नहीं। जवाब दिया कि "है" इस पर फ़रमाया कि फिर तू मँगता नहीं तो क्या है और उस की भेट लौटा दी ॥

२२२—मालिक तक पहुचा नहीं क्योंकि सत मार्ग चला नहीं और सत मार्ग जाना नहीं क्योंकि पूरा गुरू मिला नहीं, और पूरा गुरू मिला नहीं क्योंकि खोज किया नहीं, और खोज किया नहीं क्योंकि उमंग उठी नहीं, और उमंग उठी नहीं क्योंकि भली संगत मिली नहीं—की० स०

२२३—जाने बिना देखा नहीं और सोचे बिना जाना नहीं और सुने बिना सोचा नहीं और ध्यान दिये बिना सुना नहीं और शुद्ध हुए बिना ध्यान बना नहीं और मिट्टी में मिले बिना शुद्ध हुआ नहीं ॥

६२—मिश्रित शिक्षाएँ

२२४—तीन बातें बड़ी उपकारक पर सब से कठिन हैं—(१) निर्धनता में उदारता, (२) एकान्त में निर्वृत्त अर्थात् इंद्रियों के इंद्रजाल से चौकन्ने रहना, (३) भय में सचाई ॥

२२५—भूल का लच्छन क्या है—(१) परमार्थ को स्वार्थ से बढ़ कर जानने पर भी संसारी सुखों के लिये परलोक को बेच डालना, (२) यह जानने पर भी कि एक दिन मरेंगे संसार के मद में चूर रहना, (३) ऐसा विश्वास होने पर भी कि मालिक सब का पालन करता है अपनी बुद्धि और बल पर भरोसा रखना ॥

२२६—मीराबाई से उन की ननद ऊदाबाई ने प्रश्न किया —(१) क्या लेना अच्छा है क्या देना, (२) क्या गहना अच्छा है क्या तजना, (३) क्या सुध रखना अच्छा है क्या बिसारना? उत्तर दिया कि (१) नाम का लेना दान का दना, (२) गुरु शरन को गहना मान मनी को तजना, (३) अपने साथ जो उपकार करे उस की सुध रखना और जो आप दूसरे का उपकार करे उस को बिसारना यही अच्छा है ॥

२२७—किसी महात्मा का एक शिष्य घर को जाने लगा तो उपदेश की प्रार्थना की, फ़रमाया कि—(१) जब तुझे कोई दुर्जन मिले तो मालिक के आसरे उसे अपनी सज्जनता की ओर खींचने का जतन कर, (२) जो तुझे कोई कुछ दे तो पहले मालिक का धन्यवाद कर और फिर देनेवाले का जिसे

मालिक ने तुझ पर मिहरबान किया, (३) जब कोई कष्ट आवे तो अगर मालिक का धन्यवाद शुद्ध हृदय से न कर सके तो अपनी कचाई पर झुर और पछता ॥

२२८—शैतान हज़रत मूसा के पास आया और कहने लगा कि मैं आप को तीन बातें सिखाता हूँ ताकि मालिक से आप मेरे उद्धार के लिये प्रार्थना करें। उन्हों ने पूछा कि वह तीन बातें क्या हैं, कहा कि—(१) क्रोध और तुनक मिज़ाजी से परहेज़ कीजिये, क्योंकि जो कोई तेज़-मिज़ाज और ओछा होता है यानी जल्द भड़क उठता है उस से मैं ऐसे खेलता हूँ जैसे लड़के गेंद से कि जिधर चाहा गेंद को फेंक दिया, (२) औरतों से बचे रहिये क्योंकि संसार में मैं ने जितने जाल और फंदे बिछाये हैं उन सब में ज़ियादा मज़बूत और भारी फंदा औरतों का है और मुझे इस फंदे का पूरा भरोसा है, (३) कंजूसता से बचिये क्योंकि जो कंजूस होता है उस का मैं संसार और परमार्थ दोनों मटियामेल कर देता हूँ ॥ —छाँ० ब० म०

२२९—दया के समान कोई धर्म नहीं, छिमा के बराबर कोई शूरता नहीं, आत्म ज्ञान के बराबर कोई ज्ञान नहीं, सत्य के समान कोई गुन नहीं—म० भा०

२३०—एक महात्मा ने चार नसीहतें कीं—(१) मेरे पीछे जो मेरी जगह काम करे उसे मेरे ही समान समझना, (२) नित्य नेम से प्रेम प्रतीत के साथ भजन बन्दगी करना, (३)

मुसाफ़िर को अपना मिहमान करना दूसरे के यहाँ उतरने न देना, (४) आपस में प्रीत भाव रखना—की० स०

---

*२३१—(१) पंगुल चढ़ता है, (२) बहरा सुनता है, (३) अंधा देखता है, (४) गूंगा बोलता है, (५) मूर्ख ज्ञान कथता है—रा० स्वा०

२३२—पाँच बातों का सदा अभ्यास रक्खो—(१) अपने मन से कहो कि हे मन मालिक का भजन बंदगी कर नहीं तो उस का दिया हुआ अन्न मत खा; (२) हे मन जिन कामों को मालिक ने मने किया है उन को मत कर नहीं तो उस के देशके बाहर निकल जा; (३) हे मन जो तू पाप कर्म करना चाहता है तो ऐसी जगह जा कि जहाँ मालिक तुझ को न देखे नहीं तो पाप मत कर; (४) हे मन जो तू मालिक की दात में प्रसन्न न होवे तो और मालिक ढूँढ़ जो तुझ को अधिक देवे; (५) हे मन पहले इस से कि मौत आवे मालिक की भक्ति कर ले और यह काम तुरत शुरू कर जिस में धर्मराज के पास न जाना पड़े और नर्कों के दुख से बचाव होवे —छाँ० ब० म०

---

* (१)जिसके मन ने बाहर की दौड़ छोड़ दी उसी की अंतर में चढ़ाई होती है (२) जिसने बाहरी बातों से कान मूंद लिया वही अंतर का शब्द सुनताहै, (३) जिस ने बाहरी रूपों से आँख बन्द कर ली उसी को मालिक के दर्शन प्राप्त होते हैं, (४) जिसने बाहर से बोलना बन्द किया वही मालिक से बातचीत करता है (५) जो त्रिथा बुद्धि को भूल जाता है उसी को अनुभव ज्ञान प्राप्तहोता है ॥

२३३—लुक़मान हकीम से उन के बेटे ने पूछा कि अगर मालिक फ़रमावे कि एक वर माँगो तो क्या माँगना चाहिये, जवाब दिया "परमार्थ का धन"; फिर पूछा कि अगर दो वर मिलते हों तो दूसरा कौन पदार्थ माँगे फ़रमाया कि "पसीने की कमाई" (हलाल की कौड़ी); पूछा तीसरा, कहा "उदारता"; पूछा चौथा, कहा "लाज"; पूछा पाँचवाँ, कहा "भला सुभाव"; फिर पूछा कि अगर छः वर मिलते हों तो और क्या माँगे, फ़रमाया "जिस को यह पाँच दात मिलीं वह पूरा हो गया फिर ज़रूरत ही क्या रही।"

२३४—बच्चों की पाँच बातें अगर बड़ों में आजावें तो उन का दरजा पूरे साधु का हो जावे—(१) जीविका की ओर से निचिन्त रहना, (२) डर में आँसू बहाना, (३) आपस में कैसा ही झगड़ा और मार पीट हो तुरत भूल जाना, (४) बीमारी में मालिक को दोष न देना, (५) आगे के लिये संग्रह न करना ॥

२३५—दान, पछतावा, संतोष, संजम, दीनता, सचाई और दया यह सात द्वारे बैकुंठ के हैं—भ०भा०

परिशिष्ट

(बेजड़े नगीने)

"परिशिष्ट"

लोक परलोक हितकारी

लोक

१—उपदेश—किसी बुरे ख़याल को मन में न धँसने दो, ज्योंही आवे उसे निकाल दो, उस का गुनावन करने से वह चित्त में समा जायगा और पुष्ट होकर सूक्ष्म से स्थूल रूप पकड़ेगा और वह स्थूल बीज अंकुर गहेगा और धीरे धीरे बढ़कर पौद और पेड़ होगा, जिस में फूल और फल लगेंगे जिन्हें तुम बिहवल होकर खावगे और स्वाद लोगे अर्थात उस कुकर्म में वह जावगे।

सहज जुगत बुरे ख़यालों के दूर करने की यह है कि उनके उठते ही आदमी उधर से मन को मोड़कर किसी अच्छे काम या चिन्तवन में लग जाय इस रीत से बुराई की ओर झुकाव घटता जायगा और भलाई की वृद्धि होगी।

२—मौन—कहा है कि बुद्धमानों के बोलने में बड़ा असर है पर उनके चुप रहने या मौन से और ज़ियादा उपदेश होता है। बड़े लोगों से असरवाली शिक्षा तभी मिलती है जब वह जान बूझ कर चुप रहते हैं। ऐसे लोग बहुत बोलने और दलील करने से दूर भागते हैं न वह वाद विवाद करते और न अपनी बात की पच्छ करते, यदि उन्हें लोग हारा समझें तो वह परवाह नहीं करते हैं, वरन जो वे सचमुच

हार जायँ तो प्रसन्न होते हैं यह समझ कर कि उनकी एक भूल का सुधार हुआ। क्रोध दिलाने पर भी चुप रहना भारी बुद्धिमानी और महत्व का चिन्ह है, सर्व शक्ति मौन ही में है और जीभ से बढ़ कर महिमा मन की चंचलता के रोकने में है।

—जेम्स एलन

वाद विवादाँ दुख घना, बोले होत उपाध।
मौन गहै सब को सहै, सुमिरै नाम अगाध॥
नानक तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा तो हरि से मिलै, जीता जम के द्वार॥

३-छिमा—दूसरों के हाथ से जो दुख या कष्ट पाये हैं उनका याद रखना आत्म-अंधकार और उनका वैर पालना आत्म-घात है। जिसका मन ईर्षा और विरोध से भरा है उसको पूरा सुख कब मिल सकता है। जिसने छिमा करने के स्वाद को नहीं चखा है उसने कुछ चखा ही नहीं, एक बार इस रस को चखने पर सब रस फीके लगेंगे। बदला लेने का ख़याल छोड़ कर छिमा करना अंधकार से प्रकाश में आना और नर्क की जगह जीते जी स्वर्ग का आनन्द लेना है

—जेम्स एलन

४-सुधार—यदि कोई अचेत मनुष्य आगे चल कर चेते तो उस का प्रकाश ऐसा होता है जैसे बादल से निकले चाँद का

—धम्म पद

५-अपने चित्त में किसी बात की प्रबल कांछा रखना अच्छा है पर सफलता के प्राप्त करने के लिये साहस, दृढ़ता, परिश्रम से एकाग्र बुद्धि होकर काम करना आवश्यक है।

६-विद्या और गुन सिद्धि के द्वार पर पहुँचाते हैं परंतु सुभाव और लगन उस द्वार के खोलने की कुँजी है-इस से अभिप्राय सचाई, दृढ़ संकल्प, कुशलता, लगातार उद्योग, परिश्रम, गंभीरता, संजम, भरोसा और नियम-पालन है।

७-उत्तम उत्तमोत्तम का वैरी है। तात्पर्य यह है कि जो आदमी अपने साधारन दर्जे की अच्छाई से संतुष्ट हो जाता है वह वहाँ ठिठक रहता है आगे नहीं बढ़ता।

८-चोटी पर वही पहुँच सकता है जिस को हौसला है और उसी के साथ अपनी आबरू का लिहाज़ और मिज़ाज पर क़ाबू है।

९-बँधे समय पर काम करना और दूसरों के साथ करुना भाव रखना यही कुलीन के लच्छन हैं।

१०-भाग्य और प्रारब्ध पर विश्वास रखना अत्यन्त हानिकारक है। ऐसा निश्चय तुम्हारे उद्योग को शिथिल करता और उत्साह को बुझा देता है। सच्चा भाग्य क्या है—तड़के सोकर उठना, आमदनी से आधा ख़र्च करना, अपने काम से मतलब रखना, औरों के काम में दख़ल न देना, मिहनत से न हारना,

बिपत में न घबराना, हर बात में अपने समय और वचन का ख़याल रखना, अपने उद्योग पर भगवन्त की सहायता के आसरे भरोसा रखना यही सच्चा भाग्य है जिस को सफल न करो तो तुम्हारा दोष।

११–जुआ खेलना—जुआ खेलना क्योँ बुरा है? क्योँकि इससे खेलने वाले की नीयत होती कि औरोँ का धन बिना मिहनत या बदले के मूस ले बरन उसके प्रान दाँव के द्रव्य में आ समाते हैँ।

१२–दारिद्री—दारिद्री कौन है? जिसकी तृष्ना बढ़ी हुई है।

१३–धनी—धनी कौन है? जिस के पास संतोष रूपी धन है —शंकराचार्य

१४–सर्व साधारन मनुष्योँ के मुँह को कौन रोक सकता है! —श्रीहर्ष

१५–बिपत—जैसे लक्ष्मी और सम्पति चंचल है वैसे ही बिपत भी ठहराऊ नहीँ है अर्थात बहुत दिनोँ तक एक के पास नहीँ रहती —कालिदास

१६–अलंकार—ठठोली की बिचित्र सीख—यह कहन कि खलोँ और दुर्जनोँ का हृदय कठोर होता है ठीक नहीँ है क्योँकि विचारो तो सज्जनोँ का हृदय कठोर होता है यदि ऐसा न होता तो वह दुर्जनोँ के चोखे बान रूपी बचन से छिद जाता परंतु छिदना तो दूर उस पर रेखा तक नहीँ पड़ती —तथा गतेन्द्र सिंह

१७—जहाँ तक जुड़े अच्छा साफ़ सुथरा वस्त्र पहिनो। अच्छा वस्त्र प्रतिष्ठा का मूल कारन है विना इसके कोई बात भी नहीँ पूछता। देखो समुद्र ने विष्नु को पीताम्बर इत्यादि उत्तम वस्त्र धारन किये हुए देख कर अपनी लड़की लक्ष्मी दी पर महादेव को दिगम्बर (नंगा) देख कर केवल विष दिया।

१८—थोड़ी सी बातें याद रखने योग्य जो देखने में छोटी मालूम होती हैं पर संसार के परस्पर व्यवहार में बहुत सहायक हैं—

१—चिल्ला कर न बोलो और दूसरा कोई बात करता हो तो उसे काट कर आप न बोलने लगो, यदि कुछ कहना बहुत ही आवश्यक हो तो छिमा माँग कर कहो।

२—यदि कोई पुरानी कथा या कहानी सुनावे तो बीच में रोक कर ऐसा न कहो कि यह तो मैंने सुना है, अगर सुना है तो फिर से सुनो।

३—यदि तुम्हारी सलाह पर न चलने से कोई कुछ घाटा सहे और फिर झींकता आवे तो उस से यह न कहो कि मैंने तो तुम्हें मने किया था अब क्या मेरे पास आये हो, वरन हमदरदी के साथ उसे फिर सलाह दो।

४—यदि तुम्हारे पास दो चार आदमी ऐसे आ जायँ, जिन में आपस की जान पहचान नहीं है तो एक दूसरे का अवश्य परिचय करा दो।

५—यदि किसी से सलाह माँगने जाव तो अपनी राय को पक्का करने की नीयत से न जाव वरन इस नीयत से कि जो सलाह तुमको दी जायगी उसको निर्पक्ष चित्त से विचारोगे नहीँ तो मत जाव।

६—किसी प्रकार से यदि भूल हो तो अपनी टेक रखने का जतन न करो, छिमा माँग लेने में मान की हानि नहीं होती।

७—सदा यह विचार रक्खो कि दूसरों के साथ वैसा ही बरताव किया जाय जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें।

रास्ता चलने में ऐसा न चलो कि मानो वह रास्ता तुम्हारे ही लिये बना है वरन सहज रीति से बिना किसी को धक्का दिये हुए चलो तो तुम्हें आप मालूम हो जायगा कि इस रीति से बिना झगड़े टंटे के जल्दी और आराम से निकल जा सकते हो।

स्त्री, बालक, वृद्ध, रोगी और बोझा लिये हुए आदमियों को सदा रास्ता दो।

यदि किसी दूसरे की छड़ी छाता आदि तुमको छू जाय तो इस पर मिज़ाज न बदलो क्योंकि इसमें तुम्हारी हेठाई क्या हुई।

दो आदमी यदि साथ आते हों तो उनके बीच में हो कर न जाव।

अगर बैठने के लिये दो साथियों को तुम्हारे कारन पास पास जगह न मिलती हो तो आप हट कर और कहीं बैठ जाव और उन दोनों को साथ बैठने दो।

८—दूसरों की बात चीत सुनने का जतन न करो और जहाँ दो आदमी बात करते हों बिना बुलाये न जाव।

किसी से खोद खोद कर बातें न पूछो।

लोगों के सामने किसी ख़ास आदमी से गुप्त रूप से या इशारे में ऐसी बात न करो जो औरों को नहीं बताया चाहते।

९—जब कई आदमी इकट्ठे हों तो ऐसी भाषा में बोलो जो सब या अधिक लोग समझ सकें। जिनकी भाषा तुम न बोलो उन से छिमा माँगो।

१०—यदि किसी प्रसंग की चरचा के बीच कोई और सज्जन आजायँ तो आगे कथन के पहले उनसे थोड़े में पहले की बात कह दो जिस में वे भी आगे की चरचा का सिलसिला मिला सकें।

११—बिना विशेष प्रयोजन के अपने उद्यम या गृहस्थी की झंझटें दूसरों से न कहो क्योंकि वह तो थोड़ी बहुत सभी को लगी रहती हैं परंतु यदि कोई अपना वही कष्ट कहे तो हमदर्दी के साथ सुन लो।

१२—सार्वजनिक सभाओं में यदि तुम पीछे बैठे हुए हो तो खड़े मत हो क्योंकि यदि सब लोग खड़े हो जायँ तो जैसे बैठे रहने पर वैसे ही खड़े होने पर सिर की उँचाई बराबर हो जाती है, और कोई लाभ नहीं होता। भर सक शान्त रहो चाहे भाषन तुम्हारे कानों में न भी पहुँचे क्योंकि शोर हो जाने से तुम्हारा तो लाभ न होगा परंतु और लोगों की हानि होगी।

१३—समाज या दस आदमियों के बीच में यदि तुम्हें किसी बात की तकलीफ़ हो तो उसे बरदाश्त करो; याद रक्खो कि औरों को भी तो वही तकलीफ़ है।

१४—परस्पर के नमस्कार बंदना आदि से न चूको दूसरे के हाथ उठाने की आशा में कभी न रहो, स्वयं हाथ उठाओ यदि कोई तुमसे किसी का परिचय करावे तो उसको तुरत नमस्कार करो। दूसरों के आदर सत्कार में स्वयं खड़े होने में संकोच न करो इस में तुम्हारा ही सनमान है।

१५—इस बात का सदा विचार रक्खो कि औरोँ के सामने किसी का अपमान न होने पावे, एकान्त के बरताव और दूसरोँ के सामने के बरताव मेँ अंतर है। अपने छोटे भाई, अपने पुत्र और अपने आश्रित जनोँ से अकेले में बहुत कुछ कहा जा सकता है जो कि यदि दूसरोँ के सामने कहा जाय तो उनको नीचा देखना पड़ता है और इस से उनके हृदय में रोष होता है, जिस से आगे चलकर हानि होती है।

१६—यदि ज्ञान, बल, धन, कुल, पद या किसी बात का तुम्हें उचित गर्व मन मेँ हो तो भी औरोँ के सामने इस प्रकार से बरताव करो कि उनको किसी भाँत यह न झलकने पावे कि तुम्हे अपने पद का सदा ख़याल रहता है।

१७—किसी को कोई वस्तु भेँट या सौगात देने मेँ इस बात का ध्यान रक्खो कि इतने भारी दाम की न हो कि उसका बदला चुकाना पानेवाले की हैसियत से बाहर या कठिन हो जिसके कारन उसको नीचा देखना या कष्ट उठाना पड़े।

१८—मँगनी की चीज़ोँ की विशेष चिन्ता रक्खो।

१९—छोटे या ग़रीबोँ से क्रूरता और बड़ोँ या अमीरोँ के सामने अत्यन्त दीनता दुष्ट का लक्षण है। सज्जन भर सक मर्यादा को बिना भंग किये समता का बरताव रखता है।

२०—किसी से मिलने जाव तो बहुत देर तक उसके पास न बैठो उतनी ही देर ठहरो जो काम के लिये या शिष्टाचार से आवश्यक है। दूसरोँ का समय नष्ट करने का तुम्हें अधिकार नहीँ है। यदि दूसरे को काम मेँ उद्यत पाओ या यह देखो कि और लोग भी उससे मिलने को बैठे हैं तो काम जल्दी समाप्त करके चले आओ।

२१—किसी के विरुद्ध अनायास निष्कारन बुरा ख़याल न कर लो। सब मेँ भलाई बुराई है, जान पहचान या बरताव होने ही पर मनुष्य की वास्तविक परीक्षा हो सकती है।

२२—भर सक पीठ पीछे दूसरे की बुराई न करो। तुम्हारी बातेँ नोन मिरच सहित उसके कानोँ तक अवश्य घूम फिर कर पहुँचेँगी और इस से शत्रुता फैलेगी।

२३—सदा प्रसन्न चित्त रहने का जतन करो, सब से हँस कर बोलो, कड़वे या रूखे चित्त से बात न करो। यदि कोई अनसुहाता काम भी करना पड़े तो मुलायमत से करो।

२४—यदि कोई तुम्हारे साथ भलाई करता है तो उस से अनुचित लाभ उठाने का जतन न करो, न बार बार जाकर उसका समय नष्ट करो, न सिफ़ारिश चाहो। अपनी सज्जनता, स्वाभिमान और स्वाधीनता मेँ यथासंभव असर न आने दो।

२५—किसी के यहाँ कमरे मेँ जाने के समय जूता छाता छड़ी आदि बीच ही मेँ न रक्खो वरन एक किनारे जिस मेँ पीछे आने वालोँ को भी ठिकाना रहे और बुरा न दीखे।

२६—यदि किसी लकड़ी पत्थर वग़ैरह से रास्ते मेँ तुम्हेँ ठोकर लगे या उसकी संभावना हो तो उसे हटा दो जिस मेँ दूसरोँ को दुख न पहुँचे, केवल बड़बड़ाते चले जाने से कोई लाभ नहीँ।

२७—किसी के शारीरिक अथवा मानसिक कसरोँ पर न हँसो न उसे उनकी याद दिलाओ वरन उनके दूर करने के जतन मेँ मदद करो।

२८—यदि किसी से कोई भूल हो गई हो तो लोगों के सामने स्मरन करा कर उसके दिल को न दुखाओ, अगर चितावनी के लिये कहो तो हमदर्दी से एकान्त में।

२९—इस प्रसंग में एक योग्य पुरुष की दो सीखें नीचे लिखी जाती हैं—

(क) अगर कोई तुम्हारी किसी ठीक राय को भूल बतलावे और साधारन रीति से कहने से न समझे तो उससे वाद विवाद न करो वरन जो वह नेकनीयती से कह रहा है तो उसका जी न दुखाने को उस समय सभ्यता के साथ मान लो।

कथा है कि बाबर बादशाह ने कुरान का तरजुमा किया था जिसे वह राय के लिये अकसर मौलवियों को दिखलाया करता था। एक बार किसी मौलवी ने एक भूल बताई जो असल में ठीक थी लेकिन बादशाह ने उसी दम उसे उसकी राय के मुताबिक बना दिया परंतु जब मौलवी चला गया तो बादशाह ने उसे काट कर पहला लेख काइम रक्खा। राजमंत्रियों ने बादशाह से पूछा कि आपने उस मूर्ख की ग़लत राय को क्यों ठीक मान कर लिख लिया था तो जवाब दिया कि उसने वह राय नेकनीयती और मित्र भाव से दी थी इसलिये मैंने उसका जी न दुखाना चाहा।

(ख) यदि तुम्हारा कोई अफ़सर अनसमझी से तुम्हारी किसी राय को ग़लत बतलावे या अपनी ग़लत राय पर हठ करे और धीरे से कहने से न समझे तो अदब से चुप हो जाव और उसकी बात मान कर उसके अनुसार काम करो उसकी

भूल दिखलाने का तुम को फिर कभी अवसर मिल रहेगा तब उसको तुम्हारी बुद्धि और सभ्यता का दूना भाव चित्त में बस जायगा।

२०-लालच—भँवरा चमेली को छोड़ कर जूही और अनेक सुगंधित फूलों पर घूमता हुआ पहुँचा, वहाँ से असंतुष्ट होकर चन्दन के पेड़ पर गया, फिर वहाँ से भरमता हुआ कमल पर आया, अंत में लोभ का फल यह मिला कि साँझ होते ही उस के भीतर फँस गया।

—सुभाषित रत्न भांडागारम

परलोक

२१-गुरु प्रसाद की महिमा—कालिदास जी का वचन है कि महात्माओं से प्रसाद पाना यह सूचित करता है कि आगे कुछ भारी फल प्राप्त होने वाला है तो फिर गुरु प्रसाद की महिमा का तो वार पार नहीं।

२२-अलंकार—संध्या पूजा कर्म धर्म—किसी कर्मकांडी ने एक तत्त्व ज्ञानी से पूछा कि तुम संध्या पूजा क्यों नहीं करते तो उत्तर दिया कि मोह रूपी माता मर गई है और ज्ञान रूपी पुत्र जनमा है इस लिये रोज़ तो हमें सूतक लगा रहता है संध्या कैसे करें।

अभिप्राय यह कि जब तक मोह रूपी अंधकार में आदमी पड़ा रहता है और ज्ञान का प्रकाश नहीं होता तभी तक संध्या पूजा का फेर लगा रहता है।

२३-एकान्त—मनुष्य की मूल स्थिति अंतर में है जो आत्मारूपी और अलख है और इस कारन उसका जीवन और आधार अंतर ही से मिलता है न कि बाहर से। जब तक आदमी अपने अंतरी एकान्त को इन्द्रियों के सुख और बाहरी खटरागों में गँवाए रहता है वह कष्ट और क्लेश भुगतता है पर जब दुख असह हो जाता है तब वह निढाल होकर भीतर को सिमटता है और अपने अन्तरी प्रबोधक की शरन लेता है। केवल ऐसे ही एकान्त में मनुष्य अपनी प्रकृति को समझ सकता है कि उसमें क्या क्या शक्तिताँ गुप्त धरी हैं जिनके खुलने और खिलने पर अचरजी फूल फल लग सकते हैं।

—राधास्वामी

२४-हमदर्दी—हमदर्दी या करुना अपनी ममता और स्वार्थ को जीतने का नाम है इस लिये जब तक कोई इन दोनों को नीचा डालने या दबा रखने का सुभाव न कर ले उसके जी में दूसरों के लिये करुना कैसे बस सकती है। मनुष्य सत्य और शांति से तभी तक दूर है जब तक करुना रस में उसका हृदय नहीं पगा हुआ है। यह ऐसा द्रव्य है जो देने से बढ़ता है और हमारे जीवन को सुफल करता है। दूसरों के साथ हमदर्दी करना अपने लिये मालिक की दया का भंडार खोलना और हमदर्दी न करना मालिक की दया का द्वार बंद करना है।

२५-दान—देने से ऊँचा पद मिलता है धन को संचय करने से नहीं। देखो जल का दान देने से मेघ ऊपर आकाश में रहते हैं और जल का संचय करने से समुद्र नीचे पृथिवी पर वास करता है —सुभाषित रत्न भांडागारम

२६-मौत—हर काम को विना बनावट के सहज सुभाव और गम्भीरता और न्याव से ऐसे विचार के साथ करो कि मानो वह काम तुम्हारी ज़िन्दगी का आख़िरी काम है अपनी पसंद नापसंद को दख़ल न दो।

मौत के लिये हर दम तैयार रहना चाहिये चाहे कोई कम उमर में मरे चाहे बहुत बूढ़ा होकर वह उसी जीवन को त्याग करेगा जो तत्काल भोग रहा है उस से घट बढ़ कर आगे या पीछे का नहीं।

इस से यह मतलब नहीं है कि कोई जल्दी मरने की इच्छा करे पर डरने की कोई बात नहीं है। ऐसे देश-हितैषी पुरुष जिनका जीवन परोपकार के लिये अर्पित है या जो भगवत् भक्ति कमा रहे हैं उनके बहुत काल तक जीते रहने में देश का लाभ है पर वह आप वेफ़िकर हर दम भगवत मौज पर कूच करने को तैयार रहते हैं।

२७-विनय—

व्याध हूँ तैं बिहद, असाधु हौं अजामिल लौं,
  ग्राह तैं गुनाही, कहौ तिन में गिनाओगे।
स्योरी हौं, न शूद्र हौं, न केवट कहूँ को त्यौं,
  न गौतमी तिया हौं जापैं पग धरि आओगे॥
राम सौं कहत पदमाकर पुकारि तुम,
  मेरे महा पापन को पार हूँ न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
  (नाथ!) हौं तो साँचो हूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे"॥

तुलसी तृन जल कूल को, निर्धन निपट निकाज ।
का राखै का सँग चलै, वाँह गहे की लाज ॥

भावार्थ यह है कि नदी के किनारे की पतली घास जो निपट निर्बल और निकम्मी होती है यदि उसका भी कोई सहारा ले तो या तो उसकी सम्हाल करती है या साथ वह चलती है, संग नहीँ छोड़ती, फिर हे प्रभु आप जो सर्व समरथ हो बाँह गहे की कैसे लाज न रख कर शरनागत दास को भव-जल मेँ वह जाने दोगे !

थोड़े से प्रश्न दाराशिकोह (शाहजहाँ के युवराज) और उत्तर उन के गुरू स्वामी लालदयालजी के

प्र०—साधु का आदि और अन्त क्या है ?
उ०—आदि मरन और अन्त अमर जीवन ।
प्र०—साधु की वड़ाई किस मेँ है ?
उ०—सिर झुकाने मेँ ।
प्र०—साधु की बुद्धिमानी किस मेँ है ?
उ०—सिवाय प्रीतम के किसी से प्रीत न लगाने मेँ ।
प्र०—साधु का वल क्या है ?
उ०—दीनता और आधीनता ।
प्र०—साधु का धन क्या है ?
उ०—गुरू मेँ अडिग्ग प्रतीत ।
प्र०—साधु दीन आधीन कैसे होता है ?

उ०—अपने आप को पहचानने से।

प्र०—साधु का सिंगार क्या है?

उ०—भगवत भक्ति।

प्र०—साधु को चिन्ता क्या मिलने की होनी चाहिये?

उ०—संतोष।

प्र०—साधु को संदेह क्या होना चाहिये?

उ०—यह कि मेरा भजन बन्दगी मंजूर होगी या नहीं।

प्र०—साधु के बैठने और सोने का बिछौना क्या है?

उ०—धरती।

प्र०—साधु के घर का दीवा क्या है?

उ०—चाँद और सूरज।

प्र०—साधु का आहार भूख के समय क्या है?

उ०—अपना माँस।

प्र०—साधु को लालसा किस बात की होती है?

उ०—निरंतर सुमिरन ध्यान की।

प्र०—साधु की योग्यता क्या है?

उ०—अपने को भूल जाना।

प्र०—प्रेमी प्रीतम कब बन जाता है?

उ०—जब प्रेमी सिवाय प्रीतम के सब को बिसार देता है।

प्र०—भक्त की चतुराई क्या है?

उ०—संसारियों के संसर्ग से जहाँ तक बने अपने को बचाये रखना।

प्र०—साधु का राज क्या है?

उ०—किसी की परवाह न रखना और अपने आप को चीन्हना।

प्र०—पूरा गुरू कौन और गुरुमुख कौन है ?

उ०—पूरा गुरू वह है जो चेले को अपनी ओर खींच ले और गुरुमुख वह है जो गुरू की ओर खिंच जाय और जो वह कहे वही दरसने लगे।

मांस आहार

प्र०—क्या माँस खाना साधु के लिये बर्जित है ?

उ—अभ्यासी के लिये मुख्य कर।

प्र०—तो जब अभ्यास पूरा हो जाय तब खा सकता है ?

उ०—साधु को चाहिये कि पशु पंछी के माँस को अपने शरीर का माँस समझे।

प्र०—माँस का आहार क्योँ बर्जित है ?

उ०—जीव हिंसा के कारन। इसके सिवाय माँस के खाने से अभ्यास का रस नहीँ आता, मन कठोर और काला हो जाता है, शरीर हृष्ट पुष्ट होता है और काम अंग जागता है। और जिन लोगोँ का यह कथन है कि माँस खाने मेँ पाप नहीँ यद्यपि उस से बचने में पुन्य है सो यह भूल है क्योँकि सिवाय मन और इन्द्रियोँ के सब का मारना पाप है तो माँस के आहार में उन्हीँ इंद्रियोँ के स्वाद और रस के लिये किसी जीव की हत्या करना उलटी बात और अनर्थ है।

प्र०—नास्तिक और अधर्मी कौन है ?

उ०—जो सार वस्तु का लोप करना चाहता है।

प्र०—व्यर्थ काम कौन सा है ?

उ०—जो बात हो चुकी उस का सोच और जो आगे होनेवाली है उस का डर।

प्र०—सब से बुरा काम कौन सा है ?

उ०—व्यर्थ किसी का जी दुखाना और इहसान भूल जाना।

प्र०—थोड़ा खाना अच्छा है कि बहुत खाना ?

उ०—थोड़ा खाने वाले का थोड़ा मर्दन होता है और बहुत खाने वाले का बहुत।

प्र०—अपनाये हुए दास की क्या पहचान है ?

उ०—जो भजन बंदगी करता है और उस का मन मेँ अहंकार नहीँ लाता वरन समझता है कि मुझ से कुछ नहीँ बन पड़ता और अपने गुरु की चरनधूर बना रहता है।

गुरु महिमा

प्र०—लोक मेँ कहावत है—"पीरि मन ख़स अस्त, एतिक़ादि मन बस अस्त, [निश्चय पूरा तो गुरू कूड़ा] अर्थात् निश्चय पूरा हो तो गुरू का काम नहीँ—यह कहाँ तक ठीक है ?

उ०—यह भारी भूल है—यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई स्त्री कारी रह कर या हिजड़े को वर कर बच्चा खेलाने की आस करे।

प्र०—हिन्दु अपने गुरू को भगवंत कहते हैँ क्या यह ठीक है ?

उ०—ठीक है, प्रेमी प्रीतम को जो चाहे कहे, यद्यपि भक्त भगवंत नहीँ है पर उस से अलग भी नहीँ जैसा कि तुम लोगोँ मे कहा है—"मर्दानि ख़ुदा ख़ुदा न बाशन्द। लेकिन ज़ि ख़ुदा जुदा न बाशन्द"

प्र०—परमार्थ के लिये कौन मार्ग अच्छा है ?

उ०—वैराग की बड़ी महिमा है पर वैराग का अभि-प्राय घर से वन को भाग निकलने या गेरुआ वस्त्र पहन लेने का नहीँ है। किसी ने पूरे गुरू से उपदेश चाहा फ़रमाया कि "त्यागी हो जा"। उसने घर बार को तुरत त्याग कर साधू का भेष धारन कर लिया और गुरू के पास आया। उन्होँने फिर आज्ञा दी की कि "त्यागी हो जा" जिस पर उसने गुदड़ी सुदड़ी भी उतार कर फेक दी। गुरूजी बोले कि इस का नाम त्याग नहीँ है क्योँकि यह सब सामान तो मरने के समय आपही छुट जायँगे—त्याग नाम आपा तजने का है जो मरने पर भी पीछा नहीँ छोड़ता।

संतबानी पुस्तकमाला

[जीवन-चरित्र हर महात्मा के उन की बानी के आदि में दिया है]

कबीर साहिब का साखी संग्रह	१=)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहला भाग ...	॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, दूसरा भाग ...	॥)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग ...	।=)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग ...	≡)
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेखते और झूलने ...	।=)
कबीर साहिब की अखरावती	=)
धनी धरमदास जी की शब्दावली ...	॥-)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली भाग १ ...	१=)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रंथ सहित	१=)
तुलसी साहब का रत्नसागर	१।-)
,, ,, घट रामयण पहला भाग ...	१॥)
,, ,, ,, दूसरा भाग ...	१॥)
गुरु नानक की प्राण-संगली सटिप्पण पहला भाग ...	१॥)
गुरु नानक की प्राण संगली दूसरा भाग ...	१॥)
दादू दयाल की बानी, भाग १ "साखी" ...	१॥)
दादू दयाल की बानी, भाग २ "शब्द" ...	१)
सुन्दर बिलास	१-)
पलटू साहिब भाग १—कुंडलियाँ ...	॥)
,, भाग २—रेखते, झूलने, अरिल, कवित्त सवैया	॥)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ ...	॥)
जगजीवन साहिब की बानी, पहला भाग	॥-)
जगजीवन साहिब की बानी, दूसरा भाग	॥-)
दूलन दास जी की बानी ...	।)॥
चरनदास जी की बानी, पहला भाग	॥-)

चरनदास जी की बानी, दूसरा भाग ... ॥।)
गरीबदास जी की बानी ... ... १।=)
रैदास जी की बानी ... ... ॥)
दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर ... ।≡)॥
" " के चुने हुए पद और साखी ... ।=)
दरिया साहिब (माड़वाड़ वाले) की बानी ... ।≡)
भीखा साहिब की शब्दावली ... ... ॥=)॥
गुलाल साहिब की बानी ... ... ॥।=)
बाबा मलूकदास जी की बानी ... ... ।)॥
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी ... =)
यारी साहिब की रत्नावली ... ... ≡)
बुल्ला साहिब का शब्दसार ... ... ।)
केशवदास जी की अमीघूँट ... ... =)॥
धरनीदास जी की बानी ... ... ।=)
मीरा बाई की शब्दावली ... ... ॥)
सहजो बाई का सहज प्रकाश ... ... ।≡)॥
दया बाई की बानी ... ... ।)
संतबानी संग्रह, भाग १ [साखी] ... ... १॥)
[प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित]
संतबानी संग्रह, भाग २ [शब्द] ... ... १॥)
[ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित जो पहले भाग में नहीं है]

कुल २२।=)

अहिल्या बाई ... ... ≡)
सिद्धि ... ... ॥)
उत्तर ध्रुव की भयानक यात्रा ... ... ॥)
गायत्री-सावित्री ... ... ॥)
करुणा देवी ... ... ॥=)
परिशिष्ट (बेजड़े नगीने) ... ... ≡)
लोक परलोक हितकारी (संपरिशिष्ट) तसवीर सहित ॥।=)